हमारे बुज़ुर्ग

भाग-२

माइल ख़ैराबादी

विषय सूची

फ़िक़्ह के चार इमाम

इस किताब में हमारे उन चार बुज़ुर्गों के हालात बयान किए गए हैं जो फ़िक़्ह के इमाम माने जाते हैं। फ़िक़्ह मज़हबी मसले-मसाइल के इल्म को कहते हैं। इन इमामों ने आम मुसलमानों के लिए क़ुरआन और हदीस से वे तमाम मसले निकाले जिनकी ज़िन्दगी में क़दम-क़दम पर ज़रूरत पड़ती है।

अल्लाह तआला ने इन चारों बुज़ुर्गों से इतना बड़ा काम लिया कि हमें एक तरफ़ अल्लाह का ज़्यादा से ज़्यादा शुक्र अदा करना चाहिए और दूसरी तरफ़ अपने इन बुज़ुर्गों के लिए दुआ करनी चाहिए कि अल्लाह उनकी कोशिशों को क़बूल फ़रमाए और उनके मरतबे बुलंद करे और हमें उनके क़दमों पर चलने की तौफ़ीक़ दे। आमीन!

— माइल ख़ैराबादी

इमाम आज़म हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०)

हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०) फ़िक़ह के सबसे बड़े इमाम हुए हैं। पहले फ़िक़ह की कोई ऐसी किताब नहीं थी जिससे आम मुसलमान हलाल-हराम, जाइज़-नाजाइज़ और किसी बात के फ़र्ज़ होने, न होने आदि के बारे में जान सकते। इमाम अबू हनीफ़ा का मुसलमानों पर यह बड़ा एहसान है कि उन्होंने कुरआन और हदीस से फ़िक़ह के मसले निकाले और उन्हें क़ायदे से तरतीब दिया और मुसलमानों के हाथ में एक ऐसी किताब दे दी कि अब हर मुसलमान आसानी के साथ मालूम कर सकता है कि इस्लाम में हराम क्या है, हलाल क्या है, फ़र्ज़ क्या है और नफ़्ल क्या है? इमाम अबू हनीफ़ा को इसका ख़याल कैसे आया और आपने इतना काम कैसे किया? यह एक ऐसी कहानी है जो बड़ी दिलचस्प है और इससे बड़ी नसीहतें मिलती हैं। आप भी सुनिए–

कूफ़ा शहर में साबित नामी एक बड़े सौदागर रहते थे। अल्लाह ताआला ने उन्हें एक बड़ा समझदार बेटा दिया जिसका नाम उन्होंने नोमान रखा। यही नोमान पढ़-लिखकर और दीन का इल्म हासिल करके बहुत बड़े आलिम बने और फ़िक़ह के इमाम माने गए और इमाम आज़म अबू हनीफ़ा (रह०) के नाम से मशहूर हुए। उन्हीं के हालात आज हम आपको बताना चाहते हैं।

इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) 80 हिजरी/699 ई० में पैदा हुए। 16 बरस की उम्र तक घर पर तालीम हासिल करते रहे। उस वक़्त कूफ़ा में बड़े-बड़े मदरसे क़ायम थे और शहर में बड़े-बड़े आलिम और इमाम मौजूद थे, लेकिन साबित ने बेटे को किसी मदरसे में दाख़िल नहीं किया और न किसी आलिम या इमाम के घर पढ़ने भेजा। घर पर ही पढ़ाते रहे। पढ़ने-लिखने से जो वक़्त बचता उसमें तिजारत का तरीक़ा सिखाते और उसके गुर समझाते। जब इमाम साहब 16 साल के हुए तो बाप का इन्तिक़ाल हो गया। उस वक़्त तक इमाम साहब दुकानदारी और तिजारत के तरीक़े सीख चुके थे। चुनांचे बाप के मरने के बाद उन्होंने दुकान का काम संभाल लिया। थोड़े ही दिनों में कारोबार में ख़ूब तरक़्क़ी हुई। अब उन्होंने दुकान के साथ-साथ कपड़ा बुनने का एक कारख़ाना भी चालू किया। इस कारख़ाने में बहुत बढ़िया

कपड़ा बुना जाता था जो दूर-दूर तक जाता था और लोग उसे बड़े शौक़ से ख़रीदते थे।

दो-तीन साल के बाद जब उनकी उम्र 19 साल की हुई तो एक दिन किसी सौदागर से मिलने जा रहे थे कि रास्ते में कूफ़ा के मशहूर आलिम इमाम अल्लामा शअबी (रह०) मिले। आपने उनको सलाम किया। उन्होंने सलाम का जवाब दिया और खड़े हो गए। आपको देखा, फिर पूछा, "कहाँ जा रहे हो बेटे?" आपने बताया, "एक सौदागर के पास जा रहा हूँ।" यह सुनकर इमाम साहब ने कहा, "भई मेरा मतलब यह था कि तुम किसके पास पढ़ने जा रहे हो?"

इमाम साहब की बात पर इमाम अबू हनीफ़ा शर्मा गए। फिर बोले, "हज़रत मैं किसी से नहीं पढ़ता हूँ।"

इमाम शअबी को जब यह मालूम हुआ तो बड़ी मुहब्बत से कहने लगे, "तुम मुझे बहुत समझदार मालूम होते हो। आलिमों के पास बैठा करो, अल्लाह तआला तुम्हें इज़्ज़त देगा।" अबू हनीफ़ा (रह०) पर इस नसीहत का बड़ा असर हुआ। फिर वे सौदागर की दूकान पर नहीं गए, वहीं से घर लौट गए। माँ ज़िन्दा थीं और बड़ी दीनदार थीं। उनसे सारा हाल कहा। वे बहुत ख़ुश हुईं। बोलीं, "बेटा तुम्हें दीन का इल्म ज़रूर हासिल करना चाहिए।"

माँ से इजाज़त लेकर वे इमाम हम्माद (रह०) के पास गए। इमाम हम्माद (रह०) कूफ़ा के सबसे बड़े मदरसे को चला रहे थे। उन्होंने हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०) को मदरसे में बैठने की इजाज़त दे दी। अब आप इमाम हम्माद (रह०) से तालीम हासिल करते रहे। अल्लाह तआला ने आपको बड़ी अच्छी समझ दी थी। आपका हाफ़िज़ा (याद) भी बहुत अच्छा था। जो कुछ सनुते, बड़े ध्यान से सुनते और उसे याद रखते। इस तरह मेहनत और ध्यान के साथ पढ़ने से वे दो ही साल में अपने सब साथियों से आगे हो गए। आपकी मेहनत से इमाम हम्माद (रह०) बहुत ख़ुश हुए। इमाम अबू हनीफ़ा ने इतना ही नहीं किया कि इसी मदरसे में पढ़ते रहे, बल्कि एक काम और किया। वे कूफ़ा के बड़े-बड़े आलिमों और इमामों के पास भी उठते-बैठते रहे। मदरसे के वक़्त के अलावा भी आप कभी इमाम शअबी की ख़िदमत में चले जाते, कभी इमाम अबू इसहाक़ के पास जा बैठते और कभी हज़रत हिशाम बिन उरवा से जाकर पढ़ते। इस तरह दूसरे आलिमों से भी इल्म हासिल करते रहे। दो-तीन बरस में ही इमाम अबू हनीफ़ा सारे कूफ़ा में मशहूर हो गए और लोग कहने लगे कि एक न एक दिन नोमान नाम का यह नौजवान बहुत बड़ा आलिम बन जाएगा। इनशाअल्लाह

उस्ताद (गुरु) की जगह

पढ़ाई के ज़माने में ही एक बार ऐसा हुआ कि कूफ़ा भर में इमाम साहब के इल्म की धूम मच गई। हुआ यह कि उस्ताद हम्माद (रह०) किसी काम से बसरा शहर में चले गए और मदरसे का काम इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) को सौंप गए। इमाम साहब उस्ताद की जगह मदरसे में पढ़ाने लगे। अब लोगों को जो भी मसला पूछने की ज़रूरत होती वह इमाम साहब से ही पूछते। आप उसे लिख लेते फिर जो जवाब देते, उसे भी लिख लेते। दो महीने बाद उस्ताद साहब बसरा से कूफ़ा वापस आए। इस बीच इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने लोगों को साठ मसले बताए थे। ये साठों मसले और उनके जवाब इमाम साहब ने अपनी नोटबुक में लिख रखे थे। उस्ताद साहब के आने पर वे सारे सवाल-जवाब उन्हें दिखाए। उस्ताद साहब ने उसे बड़े ग़ौर से देखा। कुछ जवाबों में मामूली-सी ग़लतियाँ बताईं, बाक़ी जवाब ठीक बताए और बहुत शाबाशी दी। यह बात बहुत जल्द पूरे कूफ़ा में मशहूर हो गई और लोग इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के इल्म पर भरोसा करने लगे। आख़िर में जब उस्ताद हम्माद (रह०) का इनतिक़ाल हो गया तो लोगों ने उनकी जगह इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) को बिठा दिया। इस तरह आप कूफ़ा के सबसे बड़े मदरसे के सबसे बड़े उस्ताद हो गए।

इमाम साहब के पढ़ाने का तरीक़ा भी बहुत अच्छा था। आपको जो कुछ भी बताना होता उसकी ख़ास-ख़ास बातें पहले शागिर्दों (शिष्यों) के सामने रखते, शागिर्दों को वक़्त देते कि सब इन बातों पर अपनी राय दें। शागिर्द अपनी समझ और अपने इल्म के मुताबिक़ जो कुछ कहते, इमाम साहब उसे बड़े ग़ौर से सुनते। दूसरे शागिर्दों से कहते कि वे भी सुनें और बताएँ कि कहनेवाले शागिर्द ने क्या ठीक कहा और क्या ग़लत। आख़िर में ख़ुद अपना फ़ैसला सुनाते। इस तरह से दर्स देने से शागिर्दों में सूझ-बूझ ख़ूब बढ़ी और आगे चलकर इमाम साहब के शागिर्दों में ऐसे बड़े-बड़े आलिम और इमाम हुए जिनको दुनियाभर के आलिमों ने बहुत बड़ा आलिम और इमाम माना। आपके शागिर्दों में यूँ तो बहुत-से मशहूर आलिम हुए, लेकिन दो शागिर्द बहुत मशहूर हुए — एक इमाम अबू यूसुफ़ और दूसरे इमाम मुहम्मद (उनपर अल्लाह की रहमत हो)।

इल्म का शौक़

बहुत बड़े आलिम होने के बाद भी इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) का जी चाहता था कि वे और पढ़ें। चुनांचे अपना इल्म बढ़ाने के लिए वे मक्का शरीफ़ गए। मक्का शरीफ़ में हदीस

के बहुत-से मदरसे थे। सबसे अच्छा मदरसा हज़रत अता (रह०) का मालूम हुआ। हज़रत अता (रह०) ने दो सौ सहाब-ए-किराम से हदीसें सुनी थीं। इमाम साहब उन्हीं के मदरसे में पहुँचे। मक्का में ही हज़रत इकरिमा (रह०) भी हज़रत अता (रह०) के दर्जे के आलिम थे। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने इन दोनों बुजुर्गों से हदीस का इल्म सीखा। इसके बाद मक्का से मदीना चले गए। मदीना में प्यारे रसूल (सल्ल०) के घराने के दो ऐसे बुज़ुर्ग मौजूद थे जो इल्म के समन्दर थे। ये दो बुज़ुर्ग थे — हज़रत इमाम बाक़र (रह०) और हज़रत इमाम जाफ़र सादिक़ (रह०)। हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०) मदीना आए तो इन दोनों बुज़ुर्गों से उनको बड़ी मुहब्बत हो गई। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) सबसे पहले इमाम बाक़र (रह०) से जाकर मिले। इमाम बाक़र (रह०) भी इनका नाम सुन चुके थे। उन्होंने दो-एक सवाल किए। इमाम अबू हनीफ़ा ने उनके सवालों के जवाब इतने अच्छे अन्दाज़ में दिए कि इमाम बाक़र (रह०) ने ख़ुश होकर उनकी पेशानी चूम ली और बहुत दुआएँ दीं। इमाम अबू हनीफ़ा कहा करते थे कि दीन की सारी बातें अहले बैत के घर से निकली हैं। इसलिए अहले बैत ही दीन के बड़े आलिम हैं। यही वजह थी कि मदीना से इल्म सीखने के बाद इमाम साहब जब कूफ़ा वापस गए तो दिल मक्का और मदीना में ही लगा रहा। इमाम साहब अक्सर मक्का और मदीना जाया करते और वहाँ के आलिमों से मिला करते थे और यह मालूम करते रहते कि इस वक़्त अहले बैत में से कौन-कौन बुज़ुर्ग मदीना में मौजूद हैं।

कूफ़ा से बसरा, बसरा से मक्का, मक्का से मदीना के इस सफ़र में सिर्फ़ यही नहीं हुआ कि इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने दूसरे बुज़ुर्गों से हदीस का इल्म सीखा, बल्कि यह भी हुआ कि इन बुज़ुर्गों ने इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) की समझदारी, उनकी मेहनत और उनके शौक़ को सराहा और आख़िर में उन्हें एक बड़ा आलिम मान लिया। इमाम शअबी (रह०) तो यह कहा करते थे कि इल्म की चलती-फिरती शक्ल अबू हनीफ़ा हैं इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) अपने पहले उस्ताद हज़रत हम्माद (रज़ि०) को उसी तरह मानते रहे जैसे शुरू में मानते थे। जब तक वे ज़िन्दा रहे, उन्हीं के मदरसे में रहे, उन्हीं के पास उठते-बैठते और उन्हीं की देख-रेख में दूसरों को तालीम देते। कैसे लायक़ और शरीफ़ शागिर्द थे इमाम अबू हनीफ़ा (रह०)! ऐसे ही मेहनती, समझदार, उस्ताद की इज़्ज़त और अदब करनेवाले शागिर्द आगे चलकर बड़े आलिम माने जाते हैं। तालीम हासिल करनेवाले जो लोग पढ़ने में मेहनत नहीं करते, जो उस्ताद का अदब नहीं करते, शौक़ से पढ़ते भी नहीं और अल्लाह की दी हुई समझ को भी काम में नहीं लाते, उनपर अल्लाह तआला

अपनी बरकत नाज़िल नहीं करता। ऐसे ही पढ़नेवाले का ज़ेहन कमज़ोर हो जाता है और वे कुछ भी इल्म हासिल नहीं कर पाते। अच्छे तालिब इल्म के लिए इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) की ज़िन्दगी बेहतरीन नमूना है।

सन् 120 हिजरी में जब इमाम हम्माद (रह०) का इनतिक़ाल हुआ तो उनके शागिर्दों और कूफ़ावालों ने इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ही को उस्ताद की गद्दी पर बिठा दिया।

इमाम साहब ने इस मदरसे में तीस बरस तक ऐसी मेहनत और समझदारी से काम किया कि दूर-दूर तक आपकी धूम मच गई। चारों तरफ़ से कूफ़ा के इस मदरसे में लोग पढ़ने के लिए आने लगे। यहाँ तक कि शागिर्दों की तादाद हज़ारों तक पहुँच गई। इस मदरसे से इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के 800 बड़े ही क़ाबिल शागिर्द निकले। इनमें से पचास के लगभग ऐसे थे जिनको उस वक़्त की अब्बासी हुकूमत ने क़ाज़ी (जज) मुक़र्रर किया। एक शागिर्द अबू यूसुफ़ (रह०) तो इतने बड़े आलिम थे कि उनके वक़्त का सबसे बड़ा बादशाह हारून रशीद उनकी ताज़ीम में खड़ा हो जाता था और उसने अपनी हुकूमत में उन्हें सबसे बड़ा क़ाज़ी नियुक्त किया था।

माँ का अदब

हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) इतने बड़े आलिम हो गए थे कि उनके ज़माने में उनसे बड़ा आलिम कोई न था। आलिम होने के साथ अल्लाह ने उनके माल में भी बड़ी बरकत दी थी। कपड़ा बुनने के कारख़ाने चल रहे थे और एक दुकान भी थी। किसी पर निर्भर न थे। इतना कुछ होने के बाद भी घमंड बिलकुल न था, कभी अपनी बड़ाई न जताते थे। उनके पास छोटे-बड़े हर तरह के लोग आया करते थे और वे सबसे इज़्ज़त के साथ पेश आते थे। इमाम साहब की माँ उनके आलिम और इमाम होने के बाद भी बहुत दिनों तक ज़िन्दा रहीं। इमाम साहब ने अपनी माँ की बड़ी ख़िदमत की। हालाँकि उनके कामों के लिए नौकर-चाकर मौजूद थे, लेकिन इमाम साहब ख़ुद ही अपनी माँ के कामों को अंजाम देते। बाज़ार से कोई सामान लाना होता तो ख़ुद बाज़ार जाकर सामान लाते। अपनी माँ के सामने ऐसे बन जाते जैसे बहुत ही छोटे आदमी हों। उनके सामने जाकर कहते, "अम्मीजान! नोमान हाज़िर है।" और उस वक़्त तक माँ की ख़िदमत में रहते जब तक वे ख़ुद ही जाने की इजाज़त न दे देतीं। इमाम साहब ने अपनी माँ का कभी कोई हुक्म नहीं टाला। इस बारे में एक बहुत ही दिलचस्प और नसीहतवाली बात किताबों में लिखी है।

कूफ़ा में बहुत-से आलिम थे। उनमें से एक थे अम्र बिन वरक़ा (रह०)। इमाम साहब

की माँ उन्हें बहुत मानती थीं और जब कोई मसला पूछना होता तो इमाम अबू हनीफ़ा(रह०) को बुलातीं और उनसे कहतीं, "नोमान, ज़रा अम्र बिन वरक़ा से यह मसला तो पूछ आओ।" इमाम साहब झट उनके पास जाते और मसला पूछते। हज़रत अम्र बिन वरक़ा (रह०) इमाम साहब को देखते तो बहुत शर्माते और कहते, "आपके होते मैं क्या अर्ज़ करूँ।" इसका जवाब इमाम साहब यह देते, "मेरी माँ का हुक्म यही है कि आप बताएँ।" कभी-कभी ऐसा होता कि इब्न वरक़ा को मसला मालूम न होता तो वे इमाम साहब से ही पूछते और जवाब भिजवा देते। कितने अच्छे बेटे थे। फिर कभी यह बात भी इमाम साहब के दिल में न पैदा हुई कि वे उनसे ज़्यादा इल्मवाले हैं। लाओ ख़ुद ही बता दें, ऐसा उन्होंने कभी नहीं किया। इससे भी ज़्यादा दिलचस्प और मज़ेदार बात यह है कि एक बार माँ ने बेटे से मसला पूछा और इमाम साहब ने बता दिया तो बोलीं, "तेरी बात समझ में नहीं आती, चल इब्न वरक़ा से पूछें।" इमाम साहब माँ के साथ हो लिए और दोनों इब्न वरक़ा (रह०) के पास पहुँचे, उनसे मसला पूछा। उन्होंने भी वही जवाब दिया जो इमाम साहब ने बताया था। तब कहीं जाकर माँ को इतमीनान हुआ। इमाम साहब ने माँ से इतना भी न कहा कि मैंने भी तो यही बताया था। इस बात से साफ़ मालूम होता है कि वे अपनी माँ को 'उफ़' भी न कहते थे जैसा कि क़ुरआन में माँ-बाप के बारे में है कि 'उन्हें उफ़ न कहो।' और इसी से यह भी ज़ाहिर है कि इमाम साहब में ज़रा भी घमंड न था।

फ़ैयाज़ी

अल्लाह तआला ने इमाम साहब को इल्म से भी नवाज़ा था और दौलत से भी। इमाम साहब ने अल्लाह का दिया हुआ इल्म और दौलत अल्लाह के बंदों के लिए ख़र्च भी ख़ूब किया। उनके मदरसे में हज़ारों तालिब इल्म थे और इमाम साहब किसी क़िस्म की फ़ीस और मुआवज़े के बिना सबको दीन का इल्म सिखाते थे। जो शागिर्द ग़रीब होते उनको इतना देते कि उनका पूरा घर आराम से खाता। इमाम साहब के शागिर्दों में एक अबू यूसुफ़ भी थे। ये वही अबू यूसुफ़ हैं जो आगे चलकर इमाम साहब के सबसे बड़े शागिर्द और अपने ज़माने के सबसे बड़े आलिम और क़ाज़ी हुए। अबू यूसुफ़ पढ़ाई के ज़माने में बहुत ग़रीब थे। उनका घराना इमाम साहब के दिए हुए वज़ीफ़े पर गुज़र-बसर करता था, मगर बड़े आराम के साथ। इसी तरह और भी बहुत-से पढ़नेवालों की मदद फ़रमाया करते थे। इस मदद का मक़सद यह था कि अल्लाह का दीन ज़्यादा से ज़्यादा फैले और ज़्यादा से ज़्यादा लोग अल्लाह का दीन हासिल करें। यह तो हुई शागिर्दों के साथ बरताव की बात। दूसरों

के साथ भी उनका बरताव ऐसा ही था। लोग इमाम साहब से क़र्ज़ के तौर पर रक़म ले जाते। अगर वे वापस न कर पाते तो इमाम साहब माफ़ कर देते। मिलने-जुलनेवालों से ख़ुद ही कहा करते – "भई! जो ज़रूरत हो, कह दिया करो।" फिर अच्छी-ख़ासी रक़म देते और कहते, "अल्लाह का शुक्र अदा करो, उसी ने मुझे यह रक़म दी है। उसने अपने फ़ज़्लोकरम से आप ही लोगों को देने के लिए मुझे दी है।" क़र्ज़ माफ़ करने का एक मज़ेदार क़िस्सा यह है कि एक बार इमाम साहब किसी बीमार को देखने जा रहे थे। रास्ते में देखा कि एक आदमी उन्हें देखकर रास्ता कतरा गया। आपने आवाज़ देकर बुलाया और पूछा, "रास्ता क्यों बदल दिया?" उसने बताया, "आपका दस हज़ार रुपया क़र्ज़ है, अभी तक अदा न कर सका, इसलिए सामने आते हुए शर्म आती है।" इमाम साहब ने यह सुनकर जवाब दिया, "अच्छा मैंने माफ़ किया।"

एक बार सुना कि कूफ़े में एक बड़े आलिम क़र्ज़ में ऐसे फँसे हैं कि अदा नहीं कर सकते और उन्होंने शर्म के मारे घर से निकलना बन्द कर दिया है। यह सुनना था कि क़र्ज़ की पूरी रक़म भिजवा दी।

एक बार दो आदमियों को लड़ते देखा। पूछा, "क्यों लड़ते हो?" एक ने जवाब दिया, "यह मेरी रक़म नहीं देता।" इमाम साहब ने रक़म अपनी जेब से निकालकर दे दी और नसीहत की कि "मुसलमान आपस में लड़ा नहीं करते।"

इस तरह की बातें अबू हनीफ़ा (रह०) की ज़िन्दगी में बहुत मिलती हैं, उन्हें कहाँ तक बयान किया जाए। अब आगे सुनिए कि इमाम साहब पैसा कैसे कमाते थे?

कारोबार

यह तो मालूम ही है कि इमाम साहब का कपड़ा बुनने का बहुत बड़ा कारख़ाना था, साथ ही दुकान भी थी। दूर-दूर तक उनके कारख़ाने का माल जाता था। कारोबार में लाखों की रक़म लगी हुई थी, लेकिन क्या मजाल कि एक पैसा भी नाजाइज़ तरीक़े से आ जाए। एक हदीस में है कि "माल में ऐब हो तो ग्राहक को बता दो।" इस हदीस के मुताबिक़ इमाम साहब ने अपने आदमियों को हुक्म दे रखा था कि ऐबदार कपड़ा ग्राहक को बताकर दिया जाए। एक बार आपके नौकर इब्न अब्दुर्रहमान चूक गए। उन्हें याद न रहा कि जो थान बेचकर आए हैं उसमें ऐब था। लौटकर आए तो याद आया। इमाम साहब से सारा हाल कहा। इमाम साहब ने उन थानों की सारी क़ीमत ख़ैरात में दे दी जो 35 हज़ार की रक़म थी।

इससे भी ज़्यादा नसीहतवाली एक और घटना यह है कि एक बार एक औरत रेशम

का एक थान बेचने दुकान पर आई। उस वक़्त आप ख़ुद दुकान पर मौजूद थे। आपने उस औरत से थान की क़ीमत पूछी तो उसने 100 रु. बताए। आपने थान को ग़ौर से देखा तो वह ज़्यादा क़ीमती मालूम हुआ। आपने उस औरत से कहा कि "तुमने जो क़ीमत बताई है, वह बहुत कम है।" औरत यह सुनकर इमाम साहब का मुँह तकने लगी, समझी कि शायद इमाम साहब उसके साथ मज़ाक़ कर रहे हैं। बोली, "अच्छा अगर कम है तो आप जो मुनासिब समझें, वह दे दीजिए।" इमाम साहब ने उसे पाँच सौ रुपये दिए। वह औरत ताज्जुब करती चली गई। भला बताइए, ऐसा दुकानदार भी कोई होगा!

पड़ोसी

एक और मज़ेदार और नसीहत की बात सुनिए।

इमाम साहब के पड़ोस में एक पहलवान रहता था। पहलवान बड़ा उजड्ड क़िस्म का आदमी था और गाने-बजाने का शौक़ीन था। अक्सर रात को गाता-बजाता और उसके शोर-शराबे की वजह से इमाम साहब रात को ठीक से सो न पाते। लोग पहलवान को समझाते, लेकिन वह अपनी पहलवानी के घमंड में किसी की बात नहीं सुनता था। एक बार किसी मामले में पुलिस ने उसे पकड़कर जेल में बन्द कर दिया। इमाम साहब को मालूम हुआ तो क़ाज़ी के पास गए और कहा कि "पहलवान मेरा पड़ोसी है और पड़ोसी के नाते उसका मुझपर हक़ है कि मैं उसकी मदद करूँ। अगर जुर्माना वुसूल करके पहलवान को छोड़ा जा सकता है तो मैं जुर्माना अदा करने के लिए तैयार हूँ।"

क़ाज़ी साहब ने कहा, "आप ऐसे बुरे आदमी को छुड़ाना चाहते हैं जो आपकी नींद ख़राब करके आपको सताता है।" इमाम साहब ने जवाब दिया, "हाँ, मैं उसे छुड़ाने आया हूँ, क्योंकि प्यारे नबी (सल्ल०) ने पड़ोसी के साथ अच्छा सुलूक करने का हुक्म दिया है।"

पहलवान छोड़ दिया गया। उसपर इमाम साहब के बर्ताव का ऐसा असर पड़ा कि उसने गाने-बजाने से तौबा कर ली और इमाम साहब का शागिर्द होकर दीन का इल्म सीखने में लग गया। इस तरह एक दिन वह बहुत बड़ा आलिम बना।

हनफ़ी फ़िक़ह का तैयार होना

एक दिन की बात है कि कूफ़े में एक क़ाज़ी साहब कचहरी से फ़ारिग़ होकर अपने घर जा रहे थे। रास्ते में एक औरत को देखा कि किसी से लड़ रही थी और गालियाँ भी बक रही थी। क़ाज़ी साहब ने हुक्म दिया कि उसे पकड़कर अदालत में हाज़िर किया जाए

और ख़ुद भी कचहरी की तरफ़ लौट गए। कचहरी पहुँचकर उस औरत को कोड़े मारने की सज़ा दी।

यह बात इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने सुनी तो कहा कि क़ाज़ी साहब ने ग़लती की। क़ाज़ी के लिए यह जाइज़ नहीं कि वह ख़ुद ही कोई मुक़द्दमा अदालत में लाए और ख़ुद ही फ़ैसला करे। मुनासिब तो यह था कि कोई और शख़्स मुक़द्दमा अदालत में लाता, तब क़ाज़ी साहब फ़ैसला करते।

इमाम साहब ने क़ाज़ियों की ऐसी ही और बहुत-सी ग़लतियाँ पकड़ीं। उस वक़्त तक ऐसी कोई किताब नहीं थी जिसमें कुरआन और हदीस के मुताबिक़ फ़ैसले लिखे जाते और जब ज़रूरत पड़ती तो क़ाज़ी देख लिया करते और उसी के मुताबिक़ फ़ैसला करते। इसी लिए कई बार ऐसा होता कि बहुत-से मुक़द्दमे ऐसे सामने आते जिनमें क़ाज़ी चूक जाते और उनके चूक जाने से ग़लत फ़ैसले हो जाते। इमाम साहब ने सोचा कि क़ाज़ियों के लिए कोई ऐसी किताब ज़रूर होनी चाहिए जिससे उन्हें फ़ैसला करने में आसानी हो जाए। यही बात इमाम साहब ने अपने साथियों के सामने रखी। आपके शागिर्दों में कुरआन और सुन्नत के बड़े-बड़े नामी आलिम थे। सबने यह बात पसंद की। इमाम साहब ने अपने कुछ शागिर्दों को इस काम के लिए चुना। ये सब इमाम साहब के पास बैठते, मसलों के बारे में सोचते, कुरआन और सुन्नत को सामने रखकर अपनी-अपनी राय देते। इमाम साहब ग़ौर से सबकी बात सुनते और आख़िर में अपनी राय देते और फ़ैसला लिखवाते कि यह बात इस तरह की जाए और यह कि यह जाइज़ है या नाजाइज़, फ़र्ज़ है या वाजिब या सुन्नत वग़ैरह।

एक काम इससे पहले से हो रहा था। दूर-दूर से लोग इमाम साहब से फ़तवा पूछने आया करते थे कि फ़लाँ बात कुरआन व सुन्नत के मुताबिक़ कैसी है? मानने के लायक़ है या नहीं? यह काम करें या न करें? ऐसी बातों का कुरआन व सुन्नत के मुताबिक़ जवाब देना और उनका फ़ैसला करना ही फ़तवा देना कहलाता है। इमाम साहब इस तरह के बहुत-से मसले बता चुके थे। यह सारे फ़तवे आपके यहाँ एक रजिस्टर में लिखे हुए थे। आपने वह रजिस्टर निकलवाया और एक-एक बात और काम के बारे में जितने मसले थे वह सब एक जगह लिखे गए। इसी तरह ईमान के बारे में, हज और ज़कात के बारे में, शादी-ब्याह के बारे में, लेन-देन के बारे में, लड़ाई-झगड़े के बारे में, कमाने और ख़र्च करने के बारे में, रहने-सहने के बारे में, हुकूमत के बारे में, मतलब यह कि ज़िन्दगी में एक आदमी के साथ जो-जो मामलात और ज़रूरतें पेश आ सकती हैं, उन सबके बारे में कुरआन और

सुन्नत के मुताबिक़ जाँच-पड़ताल करके फ़ैसले लिखे गए। इस तरह के मसलों और फ़ैसलों की अलग-अलग किताबें तैयार की गईं।

ये मसले, फ़ैसले और फ़तवे बड़ी जल्दी चारों तरफ़ मशहूर हो गए। लोगों को इनकी ज़रूरत तो थी ही, सबने हाथों-हाथ लिया। क़ाज़ियों ने भी इन फ़तवों के मुताबिक़ फ़ैसले करने शुरू कर दिए और देखते ही देखते इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) की तैयार की हुई फ़िक़ह इस्लामी हुकूमत में फैल गई और फ़िक़ह हनफ़ी के नाम से मशहूर हुई। इमाम साहब और उनके शागिर्दों ने यह इतना बड़ा काम किया कि मुसलमानों को बड़ी आसानी हो गई। मुसलमान इस काम के लिए अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं और इमाम साहब और उनके शागिर्दों के लिए दुआ करते हैं कि अल्लाह उनपर अपनी रहमत नाज़िल फ़रमाए। इतना बड़ा काम अंजाम देने की वजह से ही इमाम साहब को 'इमाम आज़म' यानी सबसे बड़ा इमाम माना जाता है।

हाकिमों और बादशाहों से बरताव

यह तो आपको मालूम हो चुका है कि इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) फ़िक़ह के बहुत बड़े इमाम थे। वे अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) के हुकमों के मुताबिक़ ही सारे काम करते थे। अब हम इमाम साहब के बारे में एक बात और बताएँगे। इससे आप समझ लेंगे कि इमाम साहब अल्लाह और उसके रसूल के हुक्मों के मुक़ाबले में किसी के हुक्म की परवाह नहीं करते थे, चाहे वह कोई बड़े से बड़ा हाकिम हो या बादशाह। इमाम साहब के ज़माने के हाकिम और बादशाह उन्हें न तो दौलत का लालाच देकर अपनी जैसी बात कहलवा सके और न ही डरा-धमकाकर अपनी बात मनवा सके। बात यह थी कि इमाम साहब अपने ज़माने के हाकिमों और बादशाहों को सच्चा हाकिम और बादशाह नहीं मानते थे। वे असल हाकिम और बादशाह अल्लाह को मानते थे और यह मानते थे कि इनसान अल्लाह का बन्दा और उसका ख़लीफ़ा है। ख़लीफ़ा और नायब होने का मतलब यह है कि अल्लाह की तरफ़ से जो हुक्म इनसान को मिले, उसके मुताबिक़ वह ख़ुद भी चले और दूसरों को भी चलाए। दूसरों को अल्लाह के हुक्मों पर चलाने के लिए अल्लाह के हुक्म पर चलनेवाले अल्लाह के बन्दे अपने में से एक आदमी ऐसा चुन लेते हैं जो अल्लाह के हुक्मों को सबसे ज़्यादा जानता और मानता हो और हुक्म चलाने का सारा काम उसी को सौंप देते हैं। इस्लाम में ऐसे ही आदमी को सच्चा ख़लीफ़ा कहा जाता है। इसलिए इमाम साहब भी ऐसे ही आदमी

को सच्चा ख़लीफ़ा मानते थे। इमाम साहब के ज़माने में ऐसे बादशाह बहुत-से थे जो ताक़त के बलबूते पर दौलत की बदौलत बादशाह बन बैठे थे। ये बादशाह अपनी पसंद के लोगों को गवर्नर या सूबेदार बनाते थे और मनचाहे तरीक़े से हुकूमत करते थे। उन्हें यह फ़िक्र कम थी कि अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के बताए हुए क़ानून पर चलें। उन्हें अपना मनचाहा हुक्म चलाने और अपनी हुकूमत मज़बूत करने की फ़िक्र ज़्यादा थी। जो कोई उनकी मरज़ी के ख़िलाफ़ कुछ बोलता या कोई काम करता तो उसे सख़्त सज़ा दी जाती।

ये बादशाह अपनी हुकूमत के बड़े-बड़े लोगों को लालच देकर अपना तरफ़दार बना लेते थे और फिर चैन से हुकूमत करते थे। बाक़ी रिआया में रोकने-टोकनेवाला और होता ही कौन है, आम आदमी तो वही करते हैं जो बड़ों को करते देखते हैं।

आम लोगों पर मौलवियों और आलिमों का बड़ा असर होता है। इसी लिए ये बादशाह आलिमों को बड़े-बड़े लालच देकर, डरा-धमकाकर अपना तरफ़दार बना लेते थे। जो आलिम उनकी बात नहीं मानता था उसे या तो मरवा दिया जाता, या जेल में डाल दिया जाता था।

ऐसे हाकिमों और बादशाहों से इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) को भी सामना करना पड़ा। सबसे पहले इराक़ के गर्वनर इब्न हुबैरा ने आपको अपना तरफ़दार बनाना चाहा। इराक़ के लोग इब्न हुबैरा के ख़िलाफ़ हो गए थे। उसने सोचा कि मौलवियों और आलिमों को अपना तरफ़दार बना लिया जाए तो आम लोग भी उसकी हुकूमत के ख़िलाफ़ न होंगे। इस ख़याल से उसने बड़े-बड़े आलिमों को बुलाकर उन्हें अपनी हुकूमत में बड़े-बड़े ओहदे दिए और अपने लिए उनकी हिमायत हासिल कर ली। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) को भी बुलाया गया। आपसे कहा, "मैं आपके हाथ में अपनी मुहर देता हूँ। आप जो चाहेंगे, वही हुक्म चलेगा। अगर मेरा कोई हुक्म आपकी मरज़ी के ख़िलाफ़ हो तो आप मुहर ही न लगाएँ। इस तरह ख़ज़ाने से वही माल बाहर आएगा जिसके लिए मेरे हुक्म पर आप मुहर लगा देंगे। आप मेरे दरबार में रहें।"

इमाम साहब ने उसके दरबार में रहने और यह ज़िम्मेदारी क़बूल करने से साफ़ इनकार कर दिया। आपके इनकार पर उसने आपको क़ैद कर दिया और कोड़े लगवाने की धमकी दी। लेकिन इमाम साहब राज़ी न हुए। तब इब्न हुबैरा ने कहा कि "अच्छा आप दरबार में नहीं रहना चाहते तो न रहें, शहर का क़ाज़ी बनना तो मनज़ूर करें।" इमाम साहब इसके

लिए भी तैयार नहीं हुए। अब तो इराक़ के हाकिम इब्न हुबैरा को गुस्सा आ गया। उसने क़सम खाई कि अगर इमाम साहब ने कूफ़ा का क़ाज़ी बनना क़बूल न किया तो उन्हें कोड़ों से पिटवाऊँगा। उसके जवाब में इमाम साहब ने भी क़सम खा ली और कहा कि "दुनिया में उसके कोड़े खा लेना मेरे लिए आसान है, लेकिन आख़िरत में अल्लाह को नाराज़ करना और वहाँ की सज़ा भुगतना मेरे बस से बाहर है। ख़ुदा की क़सम! मैं हरगिज़ क़बूल न करूँगा, चाहे इब्न हुबैरा मुझे क़त्ल ही क्यों न करा दे।"

इब्न हुबैरा अपनी क़सम पर अड़ गया और आपको तीस कोड़े लगवाकर जेल भेज दिया। साथ ही यह भी हुक्म दिया कि जब तक न मानें, हर रोज़ दस कोड़े लगाए जाएँ। चुनांचे आपको रोज़ाना दस कोड़े लगाए जाने लगे। आपकी खाल उधड़ गई लेकिन आप अपनी बात पर जमे रहे। जब यह बात लोगों में फैली तो कुछ दरबारियों ने इब्न हुबैरा से कहा कि अग़र इमाम साहब जेल में मर गए तो अच्छा न होगा।

इब्न हुबैरा को भी डर था कि कहीं रिआया बग़ावत न कर दे। उसने कहा, "कोई ऐसा नहीं जो इमाम साहब को समझाए और वे मुझसे मोहलत माँग लें।" इसपर कुछ लोग जेल में गए और इब्न हुबैरा की बात आपसे कही। आपने कहा, "मैं सोचूँगा।"

बस, इतने से जवाब पर इब्न हुबैरा ने आपको छोड़ दिया। जेल से छूटने के बाद इमाम साहब मक्का चले गए। आपके मक्का जाने के बाद इराक़ में रिआया ने बग़ावत कर दी और न इब्न हुबैरा हाकिम रहा और न ही वह बादशाह जिसकी तरफ़ से वह इराक़ का सूबेदार था।

इमाम साहब और ख़लीफ़ा मनसूर

इमाम साहब के ज़माने में जो बादशाह हुए उनकी ज़बरदस्ती तो देखिए कि होते तो वह दुनिया के दूसरे बादशाहों की तरह बादशाह ही, लेकिन अपने को कहलवाते थे ख़लीफ़ा। ज़बरदस्ती ख़लीफ़ा बन बैठते और जिससे डर होता कि वह उन्हें ख़लीफ़ा नहीं मानेगा उसे बड़ी से बड़ी रकम का लालच देते, लालच देकर अपना तरफ़दार बना लेते। ऐसे ही बादशाहों में एक ऐसे ही ख़लीफ़ा से आपका पाला पड़ गया जो बड़ा ही ज़बरदस्त बादशाह था और ख़लीफ़ा मनसूर कहलाता था।

ख़लीफ़ा मनसूर तक भी इमाम साहब की शोहरत पहुँची और उसे यह भी मालूम हुआ कि सारे मुल्क में इमाम साहब की फ़िक़्ह चल रही है और लोग उसी के मुताबिक़ लेन-देन, शादी-ब्याह और सारे काम करते हैं। यह सुनकर उसने सोचा कि इमाम साहब को ख़ुश

रखना चाहिए। उसने आपके पास बड़े क़ीमती-क़ीमती तोहफ़े और लाखों की रक़म नकद भेजी। लेकिन इमाम साहब ने सब कुछ वापस कर दिया। उसने पूछा, "आप मेरे तोहफ़े क़बूल क्यों नहीं करते?"

आपने जवाब दिया, "आपने अपने माल में से कब तोहफ़ा भेजा? आपने तो मुसलमानों के बैतुलमाल (इस्लामी ख़ज़ाने) से मेरे पास तोहफ़ा भेजा है जिसपर मेरा कोई हक़ नहीं। न मैं मुसलमानों की तरफ़ से किसी जिहाद में सिपाही बनकर गया, न जिहाद में हिस्सा लेनेवाले सिपाहियों के बच्चों में से हूँ और न फ़क़ीर हूँ कि यह माल क़बूल करूँ।" यह जवाब पाकर ख़लीफ़ा अपना-सा मुँह लेकर रह गया। उसके दरबारियों ने उसे बताया कि इमाम साहब आपको सच्चा ख़लीफ़ा ही कब मानते हैं। यह सुनकर उसने आपको बुलाया और जब आप आ गए तो उसने आपसे पूछा, "क्या मैं सच्चा ख़लीफ़ा हूँ?" इमाम साहब ने साफ़ जवाब दे दिया कि "सच्चा ख़लीफ़ा तो वह होता है जिसको मुसलमान चुनें और जो अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) के हुक्मों के मुताबिक़ इस्लामी हुकूमत का काम-काज चलाए।"

भरे दरबार में मनसूर ने यह सवाल किया था। लोगों का ख़याल था कि उसी वक़्त इमाम साहब की गर्दन पर तलवार पड़ेगी और उन्हें क़त्ल कर दिया जाएगा। लेकन ख़लीफ़ा भी बड़ा घाघ था। उसने इमाम साहब की बात सुनी-अनसुनी करके आपको रुख़सत कर दिया। जब आप दरबार से निकले तो अपने वज़ीर रबीअ को एक थैली दी और कहा कि जाकर इमाम साहब को देंना। अगर वह ले लें तो उन्हें उसी जगह क़त्ल कर देना, अगर न लें तो चुपचाप वापस चले आना। रबीअ वह थैली लेकर आपके पास पहुँचा, थैली पेश की। आपने यह कहकर वापस कर दी कि "मैं यह रक़म मनसूर के लिए ही हलाल नहीं समझता तो ख़ुद कैसे ले सकता हूँ। मैं यह रकम न लूँगा, चाहे मेरी गर्दन ही क्यों न उड़ा दी जाए।" रबीअ यह सुनकर वापस चला आया और आपकी जान बच गई।

अब मनसूर ने यह कोशिश की कि इमाम साहब किसी तरह हुकूमत में कोई ओहदा (पद) क़बूल कर लें। उसने इमाम साहब को बुलाया और कहा, "मैं आपको हुकूमत का सबसे बड़ा क़ाज़ी बनाता हूँ, आप मनज़ूर फ़रमाएँ।" इमाम साहब ने जवाब दिया, "मैं इस ओहदे के क़ाबिल नहीं हूँ।" यह सुनकर मनसूर ने कहा, "यह तो आप झूठ कहते हैं, आप तो बहुत क़ाबिल आदमी हैं।" मनसूर के मुँह से 'झूठ' शब्द निकलते ही आपने फ़रमाया- "जब मैं आपकी नज़र में झूठा हूँ, तो झूठे आदमी को तो क़ाज़ी बनाना बहुत ही बुरा है।"

यह जवाब सुनकर मनसूर चुप हो गया। लेकिन कुछ दिनों के बाद उसने फिर आपको सबसे बड़े क़ाज़ी का ओहदा क़बूल करने को कहा। आपने फिर इनकार कर दिया और कहा, ''आपका क़ाज़ी वही बेहतर रहेगा जो आपकी पसंद के फ़ैसले कर सके। मैं ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) के फ़ैसलों के ख़िलाफ़ आपकी पसंद के फ़ैसले नहीं कर सकता, चाहे आप मुझे फ़ुरात नदी में डुबो दें।''

इसके बाद एक ऐसी बात हुई कि मनसूर आपकी जान का दुश्मन हो गया। हुआ यह कि हज़रत इमाम हुसैन (रज़ि०) के पोते हज़रत ज़ैद (रह०) ने मनसूर के मुक़ाबले में अपने ख़लीफ़ा होने का एलान कर दिया। हज़रत ज़ैद (रह०) बड़े नेक और ख़ुदा से डरनेवाले बुज़ुर्ग थे और क़ुरआन व हदीस का पूरा इल्म रखते थे। उन्होंने अपनी ख़िलाफ़त का एलान किया तो अच्छे और दीनदार मुसलमान उनके तरफ़दार हो गए। हज़रत इमाम आज़म अबू हनीफ़ा (रह०) ने भी हज़रत ज़ैद की हिमायत की।

इस एलान से मनसूर परेशान हुआ। उसने हज़रत ज़ैद को गिरफ़्तार करने के लिए अपनी फ़ौज भेजी। बड़ी सख़्त लड़ाई हुई जिसमें हज़रत ज़ैद (रह०) मारे गए और मनसूर को फ़तह हुई। लोगों ने उसे बताया कि हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०) भी हज़रत ज़ैद (रह०) के तरफ़दार थे। हज़रत ज़ैद (रह०) के बाद उसी ख़ानदान के एक दूसरे बुज़ुर्ग इबराहीम बिन अब्दुल्लाह मैदान में निकले। उन्होंने भी अपने ख़लीफ़ा होने का एलान किया। ये बुज़ुर्ग भी बड़े आलिम-फ़ाज़िल और नेक थे। इनकी तरफ़दारी में तो हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०) ने बहुत बड़ा काम किया। मनसूर का एक सिपहसालार हसन था। हसन इमाम साहब के पास आया-जाया करता था। मनसूर ने इसी हसन बिन अब्दुल्लाह को मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह और उनके भाई इबराहीम बिन अब्दुल्लाह के मुक़ाबले के लिए भेजना चाहा। हसन को इसका हुक्म भी दे दिया। हसन ने इस बारे में इमाम साहब की राय ली। आपने उसे जाने से रोक दिया। उसने मनसूर से कह दिया कि वह इस लड़ाई में हिस्सा न लेगा।

मनसूर चुप हो रहा और दूसरे सिपहसालार को फ़ौज के साथ भेज दिया। फिर दरबारियों से इस बारे में पूछ-ताछ की कि हसन लड़ाई पर क्यों नहीं गया? लोगों ने बातया कि हसन इमाम अबू हनीफ़ा के पास जाया करता है।

मनसूर समझ गया कि इमाम साहब ने ही उसे जाने से रोका होगा। अब तो वह इमाम साहब की जान का दुश्मन हो गया। उसने आपको दरबार में बुलाया और फिर क़ाज़ी बनने के लिए कहा। आपने इस बार भी इनकार कर दिया। गुस्सा तो पहले से था ही, उसने हुक्म

दिया कि आपको कोड़े लगाए जाएँ। उसके हुक्म से इमाम साहब पर कोड़े बरसने लगे। यहाँ तक कि आपका बदन लहूलुहान हो गया। इसकी ख़बर किसी ने मनसूर के चचा अब्दुस्समद को पहुँचाई। वह दौड़ा हुआ आया, मनसूर से कहा, "यह तूने क्या किया? यह (इमाम अबू हनीफ़ा) इराक़ का सबसे बड़ा आलिम और फ़क़ीह है। समझ ले कि तूने अपने ऊपर एक लाख तलवारें खिंचवा लीं।"

अब्दुस्समद के कहने का मतलब यह था कि जब इराक़वाले यह सुनेंगे कि मनसूर ने इमाम साहब को सज़ा दी है तो वे इसका बदला लेने के लिए उठ खड़े होंगे। मनसूर यह सुनकर घबरा गया। उसने इमाम साहब को ख़ुश करने के लिए तीस कोड़ों की सज़ा के बदले तीस हज़ार की रक़म भेजी कि आप ले लें। इमाम साहब ने यह रक़म वापस कर दी और कहला भेजा कि "मनसूर के पास हलाल का माल है ही कहाँ कि मैं लूँ।"

उस वक़्त चचा अब्दुस्समद के कहने से मनसूर ने इमाम साहब को छोड़ दिया था, लेकिन फिर बुलाया और फिर क़ाजी बनने के लिए कहा। इमाम साहब ने फिर इनकार किया तो उसने आपको जेल भेज दिया और फिर कुछ दिनों के बाद जेल ही में आपको ज़हर दिलवा दिया। ज़हर के असर से सन् 150 हिजरी में इमाम साहब का इनतिक़ाल हो गया।

जब आपको यक़ीन हो गया कि अब मौत क़रीब है तो आपने लोगों से कहा, "मेरे मरने के बाद मुझे बग़दाद में ऐसी जगह दफ़्न न करना जो मनसूर ने नाजाइज़ तरीक़े से लोगों से छीनी हो।"

यह था उस वक़्त के हाकिमों और बादशाहों से इमाम साहब का बरताव! ज़ुल्म व सितम सहते-सहते मौत को गले लगाया लेकिन ज़ालिम और ज़बर्दस्ती बादशाह बनने वालों को ख़लीफ़ा तसलीम न किया, न उनकी नौकरी की और न ही उनके तोहफ़े क़बूल किए। अल्लाह तआला इमाम साहब की क़ब्र को नूर से भर दे और उन पर अपनी रहमतें नाज़िल करे और हमें उनकी पैरवी की तौफ़ीक़ दे।

इमाम मालिक (रह०)

इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) की तरह इमाम मालिक (रह०) भी फ़िक़ह के बहुत बड़े इमाम गुज़रे हैं। इमाम साहब मदीना शरीफ़ के रहनेवाले थे। आप प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे सहाबी हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) के प्यारे बेटे थे। सन 93 हिजरी/ 711 ई० में पैदा हुए और 11 रबीउल अव्वल, सन् 179 हि०/795 ई० में सुबह के वक़्त वफ़ात पाई। आपकी फ़िक़ह की किताब 'मुवत्ता' के नाम से मशहूर है। दुनिया के लाखों मुसलमान इमाम मालिक (रह०) की फ़िक़ह के मुताबिक़ मसलों पर अमल करते हैं। इमाम मालिक (रह०) इतने बड़े इमाम थे कि उनके ज़माने का बादशाह हारून रशीद जब हज करने गया तो मदीना भी गया और आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ। उसने आपसे 'मुवत्ता' सुनी। इस तरह गोया वह आपका शागिर्द था।

आइए, आपको बताएँ कि इमाम मालिक (रह०) इतने बड़े आलिम किस तरह बने। यह तो आपको शुरू में ही मालूम हो गया कि इमाम मालिक (रह०) एक मशहूर सहाबी (रज़ि०) के बेटे थे। प्यारे रसूल (सल्ल०) के सारे सहाबियों ने दीन का इल्म हुज़ूर (सल्ल०) से ही सीखा था और हुज़ूर (सल्ल०) को देखकर वे सारी बातें सीख गए थे जिनसे अल्लाह राज़ी और ख़ुश होता है। फिर हज़रत अनस (रज़ि०) तो बचपन ही से हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में पहुँच गए थे और वे आप (सल्ल०) की पूरी-पूरी पैरवी करते थे और उसी तरह अपने घरवालों को दीन की बातें सिखाते थे जिस तरह हुज़ूर (सल्ल०) ने उनको सिखाई थीं।

यह तो हुईं बाप की कोशिशें। लेकिन सच्ची बात यह है कि यह अल्लाह की मेहरबानी थी कि इमाम मालिक (रह०) ऐसे घराने में पैदा हुए। फिर आपको अल्लाह ने समझ भी बहुत अच्छी दी थी। वे बड़े मेहनती थे और इल्म हासिल करने का भी बहुत शौक़ था। उन्होंने अपने वालिद हज़रत अनस (रज़ि०) से तो दीन का इल्म सीखा ही था, उस वक़्त मदीना शरीफ़ में दीन के और भी बड़े-बड़े आलिम मौजूद थे। आपने उनकी शागिर्दी इख़तियार करके उनसे भी इल्म हासिल किया। अपने वालिद के अलावा उनके उस्तादों में इमाम ज़ुहरी (रह०), इमाम यहया (रह०), हज़रत नाफ़े, मुहम्मद बिन मुनकदिर (रह०),

हिशाम बिन उरवा (रह०), ज़ैद बिन असलम और हज़रत रबीआ बिन अब्दुर्रहमान बहुत मशहूर हैं। (अल्लाह इन सबसे राज़ी हो और उनपर अपनी रहमत नाज़िल करे)। इमाम मालिक (रह०) के ये सभी उस्ताद अपने वक़्त के बहुत बड़े आलिम थे। बड़े-बड़े आलिमों ने भी उन्हें दीन का इमाम माना है।

इमाम मालिक (रह०) इन आलिमों के पास जाते, उनसे हदीसें सुनते, सुनकर याद कर लेते। अल्लाह तआला ने हाफ़िज़ा बड़ा अच्छा दिया था। इमाम साहब जो हदीस सुनते, उसे याद कर लेते और लिख भी लेते थे। इस तरह उनके पास बहुत-सी हदीसें इकट्ठा हो गईं। क़ुरआन के तो आप बहुत बड़े आलिम थे ही, अब हदीस के आलिम भी हो गए। अल्लाह तआला ने क़ुरआन और हदीस को समझने की सूझबूझ भी दी थी। आपने क़ुरआन और हदीस से रोज़मर्रा के काम आनेवाले बहुत-से मसले बयान किए और उन्हें भी लिख लिया। लिखते-लिखते उनके पास एक बड़ी उम्दा किताब तैयार हो गई। इसी का नाम 'मुवत्ता इमाम मालिक' है।

दीन के इतने बड़े आलिम और इमाम होने के बाद आप घर में नहीं बैठे रहे, बल्कि उम्र-भर दीन का इल्म फैलाते रहे, लोगों को समझाते रहे और पढ़-पढ़कर सुनाते रहे। इस काम के लिए आपने मसजिदे नबवी में एक जगह तय कर ली थी। आप फ़ज्र की नमाज़ के बाद जब धूप ज़रा चमक जाती, उसी जगह बैठ जाते और वहाँ मौजूद लोगों को दीन की बातें सुनाना शुरू कर देते। लोग जमा हो जाते, आपकी बातें सुनते और लिखते जाते और अपनी तरफ़ से भी मसले पूछते। इमाम मालिक (रह०) इन सब बातों का जवाब देते और मसले बताते।

यही सिलसिला उम्र-भर जारी रहा। मसजिदे नबवी में यह जगह, मानो एक दीनी मदरसा था। अल्लाह के हज़ारों बन्दे इस मदरसे से इल्म सीखते थे और इल्म सीखने के लिए हज़ारों मील से लोग आया करते थे। अरब से हज़ारों मील दूर पश्चिम की ओर अन्दलस यानी स्पेन से हज़रत यहया (रह०) इल्म हासिल करने आए और इतने बड़े आलिम होकर वापस गए कि वहाँ के बादशाह ने उन्हें सबसे बड़ा आलिम और इमाम माना। उन्होंने स्पेन में ख़ूब दीन फैलाया। इमाम यहया के अलावा आपके और भी बहुत-से शागिर्द हुए, जिनमें सबसे ज़्यादा मशहूर इमाम शाफ़ई (रह०) हैं।

इमाम मालिक (रह०) जब अपने मदरसे में बैठते तो ख़ुद भी बड़े अदब के साथ

बैठते और शागिर्दों को भी अदब की ताकीद करते। जब हारून रशीद हज करके मदीना आया और आपके मदरसे में हाज़िरी दी तो इमाम साहब को बहुत-से तोहफ़े पेश किए और हज़ारों की रक़म दी।

बादशाह ने इमाम साहब (रह०) से मुवत्ता सुनी और बहुत ख़ुश हुआ। कहने लगा, "आप मेरे साथ बग़दाद चलें और वहाँ से चारों तरफ़ दीन का इल्म फैलाएँ।" लेकिन इमाम साहब (रह०) को मदीना बहुत प्यारा था। आप प्यारे रसूल (सल्ल०) के शहर को छोड़कर कहीं और नहीं जाना चाहते थे। इसके अलावा अगर बादशाह की नौकरी कर लेते तो उसकी-सी बात कहनी पड़ती। इसलिए बग़दाद जाने से इनकार कर दिया और जवाब दिया कि मैं प्यारे रसूल (सल्ल०) के शहर को छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। अगर आप चाहें तो अपने दिए हुए तोहफ़े और रक़म वापस ले सकते हैं।

हारून रशीद ने एक बात और कही। उसने कहा, "मुल्क में लोग हनफ़ी फ़िक़्ह पर चल रहे हैं। अगर आप फ़रमाएँ तो मैं उसे बंद करा दूँ और आपकी किताब 'मुवत्ता' पर अमल करने का हुक्म जारी कर दूँ।"

इमाम मालिक (रह०) को अल्लाह ने बड़ा दिल अता किया था। वे ऐसे आलिम नहीं थे कि दूसरे आलिमों से जलते। उस वक़्त अगर चाहते तो इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) की जगह सारे मुल्क में उनकी फ़िक़्ह के मुताबिक़ अमल किया जाता। लेकिन उन्होंने हारून रशीद से कहा, "सिर्फ़ मैं ही हदीस जाननेवाला नहीं हूँ। प्यारे रसूल (सल्ल०) के चाहनेवालों ने हर जगह इल्म फैला रखा है। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) की फ़िक़्ह जहाँ तक फैल चुकी है, वहाँ उसी के मुताबिक़ अमल होना चाहिए।"

कैसे अच्छे थे इमाम मालिक, सोचने की बात है! एक आज के आलिम हैं कि एक दूसरे से हसद (डाह) रखते हैं और चाहते हैं कि उनके सामने किसी दूसरे की बात न मानी जाए। ऐसे आलिमों को समझना चाहिए कि बड़ा आलिम कैसा होता है। एक बड़े और अच्छे आलिम के लिए इमाम मालिक (रह०) एक नमूना हैं।

एक बार ख़लीफ़ा ने किसी मामले में आपसे फ़तवा पूछा। आपने क़ुरआन और सुन्नत के मुताबिक़ ठीक-ठीक मसला बता दिया। ख़लीफ़ा ने कहा कि आप ऐसा और ऐसा फ़तवा दे दें, क्योंकि मैं ऐसा ही चाहता हूँ। लेकिन इमाम साहब ने क़ुरआन और सुन्नत के ख़िलाफ़ और ख़लीफ़ा की मरज़ी के मुताबिक़ फ़तवा देने से इनकार कर दिया। ख़लीफ़ा ख़ुद तो

चुप रहा लेकिन सिपाहियों को इशारा कर दिया। सिपाहियों ने इमाम साहब को पकड़कर आपके बाज़ू उखाड़ दिए। यह तकलीफ़ इमाम साहब के लिए बहुत बड़ी तकलीफ़ थी। लेकिन आपने कोई परवाह न की। इसके बाद जेल की सज़ा भी बड़े सब्र के साथ सहते रहे।

हज़रत इमाम मालिक (रह०) ने 85 साल की उम्र पाई। उम्र-भर अल्लाह के दीन की तालीम देते रहे। आपके पास शागिर्द और वक़्त के बादशाह क़ीमती तोहफ़े और बड़ी-बड़ी रकमें भेजते थे। चूँकि प्यारे नबी (सल्ल०) ने तोहफ़ा क़बूल करने को कहा है, चाहे वह मामूली ही क्यों न हो, इसलिए इमाम मालिक (रह०) इन तोहफ़ों को क़बूल कर लेते थे। ख़ुद अपने बाल-बच्चों पर भी ख़र्च करते थे और अल्लाह के बन्दों पर भी दिल खोलकर ख़र्च करते थे। जो लोग बाहर से इल्म हासिल करने आते उनको इतना देते कि उन्हें हैरत होती। हज़रत यहया स्पेन से आए तो उन्हें इतना दिया कि मालदार हो गए और जब वापस गए तो इतना दिया कि मालामाल हो गए। इसी तरह इमाम शाफ़ई (रह०) को कई बार लाखों की रक़म दी।

इमाम मालिक (रह०) की फ़ैयाज़ी का एक नमूना हज़रत शाफ़ई (रह०) से ताल्लुक़ रखता है, जिसे हम इमाम शाफ़ई (रह०) के हालात में बयान करेंगे।

इमाम शाफ़ई (रह०)

प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे साथियों में एक बुज़ुर्ग सहाबी हज़रत साइब (रज़ि०) थे। उनके बेटे हज़रत शाफ़े बहुत मशहूर आदमी हुए हैं। उन्हीं शाफ़े के पड़पोते थे हज़रत इदरीस, और हज़रत इदरीस के बेटे थे हज़रत इमाम शाफ़ई (रह०)।

इमाम शाफ़ई (रह०) का असल नाम मुहम्मद था, लेकिन अपने परदादा के नाम पर 'शाफ़ई' मशहूर हुए और यह नाम ऐसा मशहूर हुआ कि अब लोग असल नाम तो कम ही जानते हैं लेकिन इमाम शाफ़ई सबकी ज़बान पर है। इमाम शाफ़ई (रह०) भी फ़िक़ह के बहुत बड़े इमाम हुए हैं। दुनियाभर में करोड़ों मुसलमान आपकी फ़िक़ह के मुताबिक़ चलते हैं।

इमाम शाफ़ई (रह०) का घराना मक्का में रहता था। वहीं इमाम साहब 15 रजब सन् 150 हिजरी/767 ई० को पैदा हुए। इसी साल महीने की इसी तारीख़ को फ़िक़ह के सबसे बड़े इमाम हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०) का इनतिक़ाल हुआ था। अल्लाह तआला ने इस तारीख़ को एक इमाम अपने पास बुलाया तो एक दूसरा इमाम पैदा किया।

इमाम शाफ़ई (रह०) के माँ-बाप बड़े पक्के और दीनदार मुसलमान थे। इमाम साहब ने बोलना शुरू किया और उनकी ज़बान साफ़ हुई तो उन्हें क़ुरआन शरीफ़ पढ़ाना शुरू किया गया। इमाम साहब बच्चे ही थे कि आपने क़ुरआन मजीद याद कर लिया। ज़रा-सी उम्र में क़ुरआन याद हो जाना लोगों को बड़ा अजीब लगा। इस उम्र में इमाम साहब का हाफ़िज़ा देखकर लोग कहने लगे कि यह बच्चा आगे चलकर बहुत बड़ा आलिम होगा।

इमाम साहब ने बचपन ही में क़ुरआन याद कर लिया तो माँ-बाप ने उन्हें हुज़ैल भेज दिया। हुज़ैल मक्का के पास एक गाँव था और यहाँ के लोग अच्छी ज़बान बोलने के लिए मशहूर थे। इसलिए इमाम साहब को यहाँ भेजा गया कि वे अच्छी बोली बोलना सीख लें। दो-तीन साल वहाँ रहकर आप मक्का वापस आ गए और मक्का के आलिमों से दीन का इल्म सीखने लगे। इसी ज़माने में इमाम साहब के वालिद का इनतिक़ाल हो गया और अब अपनी माँ की निगरानी में रहने लगे। आपकी माँ ने आपका मज़बूत हाफ़िज़ा और दिल में पढ़ने का शौक़ देखा तो तय कर लिया कि अपने ज़हीन बेटे को बड़े आलिमों के पास पढ़ने के लिए भेजेंगी। वे इमाम साहब के शौक को उभारतीं और ऐसी बातें करतीं कि इमाम साहब

का दिल बड़े-बड़े आलिमों और इमामों से मिलने को चाहता। वे इमाम साहब के लिए अल्लाह से दुआएँ भी करतीं। अभी इमाम साहब चौदह बरस के ही थे कि उनके दिल में यह शौक़ इतना उभर आया कि आप मक्का के बाहर बड़े-बड़े आलिमों और इमामों के पास जाने के लिए बेचैन होने लगे।

आख़िर एक दिन इमाम साहब ने अपनी माँ से बाहर जाने की इजाजत माँगी। वे कुछ उदास हो गईं। इमाम साहब बड़े अच्छे बेटे थे, माँ को उदास देखा तो बोले, ''अम्मा, अगर आप इजाज़त न देंगी तो फिर मैं आप ही की ख़िदमत में रहूँगा।'' माँ ने यह बात सुनकर कहा, ''बेटा! मैं इसलिए उदास नहीं हुई। मैं तो इसके लिए रात-दिन दुआएँ माँगती थी। मैं उदास इसलिए हूँ कि आज मेरे पास इतना कुछ भी नहीं कि तेरे लिए दो रोटियाँ पकाकर साथ कर दूँ।'' यह कहकर वे रो पड़ीं। फिर उन्होंने ख़ुद को संभाला और कहा, ''बेटा! कुछ फ़िक्र न कर, तू जिसका दीन सीखने के लिए जा रहा है, वह (अल्लाह तआला) ख़ुद ही इनतिज़ाम करेगा। वह रोज़ी देनेवाला है। वह ऐसे तरीक़ों से रोज़ी पहुँचाता है कि बन्दे को पता ही नहीं होता।''

कैसी अच्छी बात कही थी माँ ने, और कैसी अच्छी माँ थीं वह! अपनी बात ख़त्म करके उन्होंने दो चादरें निकालीं, इमाम साहब को दीं और बोलीं, ''बेटा! तू मेरे पास अल्लाह की अमानत था। अब मैं उसकी अमानत (यानी तुझे) उसी अल्लाह को सौंपती हूँ। मैं सच्चे दिल से समझती हूँ कि वह तुझे हर आफ़त से बचाएगा।'' यह कहकर बेटे को गले से लगाया और इस तरह दुआ की— ''ऐ मेरे पालनेवाले! मैं अपने प्यारे बेटे को तेरी राह में दीन सीखने को भेज रही हूँ, वह दीन जो प्यारे रसूल (सल्ल०) लेकर आए। ऐ मेरे रब! जिस तरह तूने मेरी यह दुआ सुन ली कि मेरे बेटे को दीन का इल्म सीखने का शौक़ हो, उसी तरह अब उसके शौक़ को पूरा कर। अपनी तरफ़ से उसकी मदद कर और मेरी ज़िन्दगी में ही उसे दीन का सबसे बड़ा आलिम बना, ताकि मैं उसे देखूँ और ज़्यादा शुक्र अदा करूँ।''

यह दुआ माँगकर बेटे की पीठ पर हाथ फेरा और कहा, ''जा बेटा! तुझे अल्लाह के हवाले किया, ख़ुदा हाफ़िज़, वही सबसे बेहतर हिफ़ाज़त करनेवाला है और वही सबसे ज़्यादा रहमवाला और मेहरबान है।''

यह कहकर बेटे को विदा किया। इमाम शाफ़ई (रह०) चौदह साल की उम्र में इल्म सीखने के लिए मक्का से मदीना की तरफ़ चले, लेकिन अकेले थे। सोचते थे कि कोई क़ाफ़िला मिले तो उसके साथ हो लें। अल्लाह की मेहरबानी देखिए, थोड़ी ही दूर यानी एक

गाँव 'ज़ी तवा' तक ही गए थे कि एक क़ाफ़िले को देखा कि 'ज़ी तवा' में पड़ाव डाले हुए है। इमाम साहब पड़ाव के पास पहुँचे, लोगों को सलाम किया। फिर एक बुज़ुर्ग को देखा, वह भी आपकी तरफ़ देख रहे थे। उन्होंने इमाम साहब को अपने पास बुलाया और कहा, ''बेटे मैं चाहता हूँ कि आप इस वक़्त मेरे साथ खाना खाएँ।''

इमाम साहब के माँ-बाप ने उन्हें तीन उँगलियों से खाना खाना सिखाया था। चुनांचे आप खाना खाते वक़्त तीन उँगलियों से खाना खाने लगे। लेकिन देखा कि वे बुज़ुर्ग और उनके दूसरे साथी पाँचों उँगलियों से खाना खा रहे हैं। यह देखकर इमाम साहब भी पाँचों उँगलियों से खाने लगे, ताकि लोग ग़ैर न समझें। वे बुज़ुर्ग देख रहे थे कि इमाम साहब अपने आगे ही से खा रहे थे, इधर-उधर हाथ नहीं बढ़ाते थे।

खाना खा चुके तो आपने दुआ पढ़ी— ''शुक्र है उस ख़ुदा का जिसने खाना खिलाया, पानी पिलाया और मुझे फ़रमाबरदारों में पैदा किया।'' दुआ पढ़ने के बाद उन बुज़ुर्ग का भी शुक्रिया अदा किया और बरकत की दुआ दी। वे बुज़ुर्ग यह सब बड़े ग़ौर से देख और सुन रहे थे। खाने के बाद उन्होंने इमाम साहब को अपने पास बिठा लिया और इस तरह की बातें होने लगीं—

बुज़ुर्ग: ऐसा लगता है कि तुम मक्का के रहनेवाले हो।

इमाम साहब: जी हाँ, मैं उसी शहर का रहनेवाला हूँ।

बुज़ुर्ग: मेरा ख़याल है कि तुम क़ुरैश ख़ानदान से हो।

इमाम साहब: जी हाँ, मैं क़ुरैश ख़ानदान से ही हूँ, आपका ख़याल ठीक है। लेकिन यह तो बताइए कि आपको यह बातें कैसे मालूम हुईं? ग़ैब की बातें तो सिर्फ़ अल्लाह तआला ही जानता है।

बुज़ुर्ग: बेटे, यह पहचानना मेरे लिए बड़ी बात नहीं। मैं बहुत घूमा-फिरा हूँ, शहरों में रहा हूँ और गाँवों में भी। पढ़े-लिखे लोगों से भी मिला हूँ और देहातियों से भी। तुम्हारी आदतें देखकर और बातें सुनकर मैंने समझ लिया कि तुम शहरी लड़के हो और क़ुरैश ख़ानदान अपनी अच्छी आदतों के लिए मशहूर है। वे ख़ुद दूसरों को खाना खिलाने के लिए मशहूर हैं, लेकिन जब दूसरे उन्हें खाने के लिए बुलाते हैं तो वे इनकार नहीं करते, तुमने भी इनकार नहीं किया।

इमाम साहब: अच्छा हज़रत! यह तो बताइए कि आप कहाँ के रहनेवाले हैं?

बुज़ुर्ग: मैं प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे शहर मदीना मुनव्वरा का रहनेवाला हूँ।

इमाम साहब: क्या आप मुझे बताएँगे कि इस वक़्त मदीना में दीन का सबसे बड़ा

आलिम कौन है?

बुज़ुर्ग: मदीने में इस वक़्त सबसे बड़े आलिम हज़रत इमाम मालिक (रह०) हैं। ख़ुदा उन्हें और बुलन्द मरतबा दे।

इमाम साहब: अल्लाह तआला आपकी दुआ क़बूल करे और मेरी भी दुआ सुन ले।

बुज़ुर्ग: तो क्या तुम दीन का इल्म सीखने मदीना जा रहे हो?

इमाम साहब: जी हाँ, दिल में यही अरमान है और ज़बान पर यही दुआ।

बुज़ुर्ग: वह तो मैंने पहले ही समझ लिया था कि तुम इल्म हासिल करने के लिए घर से निकले हो। तुम इल्म के बड़े शौक़ीन मालूम होते हो। अच्छा तो सुनो, अल्लाह ने तुम्हारी दुआ सुन ली। तुम दीन का इल्म सीखने जा रहे हो, तुम अल्लाह के मेहमान हो। तुम्हारी मदद करना हमारा फ़र्ज़ है। वह देखो उधर वह जो सबसे अच्छा ऊँट खड़ा है और उसपर सामान लदा है, वह ऊँट और उसपर लदा सारा सामान तुम्हारे लिए ही है। हम तुम्हें मदीना पहुँचाएँगे।

बुज़ुर्ग से यह बात सुनकर इमाम साहब बहुत ख़ुश हुए। दिल में अल्लाह का शुक्र अदा किया। इसके बाद जब क़ाफ़िला वहाँ से आगे रवाना हुआ तो इमाम साहब ऊँट पर बैठे-बैठे क़ुरआन पाक पढ़ने लगे और रास्तेभर पढ़ते रहे।

इमाम साहब को बचपन ही से प्यारे रसूल (सल्ल०) से बड़ी मुहब्बत थी। जैसे-जैसे मदीना क़रीब आता गया, इमाम साहब का दिल चाहता कि अब मदीना जल्द आ जाए। क़ाफ़िला आठवें दिन मदीना पहुँचा। इमाम साहब की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। अस्र का वक़्त था, सीधे मसजिद नबवी पहुँचे। वहाँ जमाअत से नमाज़ हो चुकी थी। आपने अकेले नमाज़ अदा की। फिर देखा कि एक तरफ़ एक बुज़ुर्ग बैठे हैं, चेहरे पर नूर बरस रहा है और लोग उनके आस-पास जमा होते जा रहे हैं। इमाम साहब भी वहीं जाकर बैठ गए। नूरानी चेहरेवाले बुज़ुर्ग एक चादर बाँधे थे और एक चादर ओढ़े। क़ाफ़िले में इमाम मालिक (रह०) के बारे में सुना था कि वे ऐसी शक्लो सूरत के बुज़ुर्ग हैं। तुरन्त समझ गए कि यह इमाम मालिक (रह०) हैं। फिर जब इमाम मालिक (रह०) ने हदीस पढ़नी शुरू की तो पूरा यक़ीन हो गया कि यही हज़रत इमाम मालिक (रह०) हैं।

इमाम मालिक (रह०) ने हदीस इस तरह पढ़नी शुरू की— ''मुझसे नाफ़े ने और नाफ़े से अब्दुल्लाह बिन उमर ने कहा कि मुझसे इस क़ब्र में सोनेवाले ने फ़रमाया'' और यह कहते हुए इमाम मालिक (रह०) ने सीधे हाथ से प्यारे रसूल (सल्ल०) के पाक रौज़े की तरफ़ इशारा किया और फिर पूरी हदीस सुनाई।

इमाम शाफ़ई (रह०) कहते हैं कि इमाम मालिक (रह०) के हदीस पढ़ाने का यह तरीक़ा देखकर मेरे ऊपर उनका रौब छा गया। इमाम साहब जो हदीस भी सुनाते, इसी तरह हवाले देते कि मैंने फ़लाँ से सुना और फ़लाँ ने फ़लाँ से और फिर जब बात प्यारे रसूल (सल्ल०) तक पहुँचती तो दाहिने हाथ से रौज़-ए-पाक[1] की तरफ़ इशारा करके उसी तरह कहते जैसे पहले कहा था।

इमाम मालिक (रह०) से हदीस सुननेवाले हदीसें सुनकर लिख लिया करते थे। इमाम शाफ़ई (रह०) के पास लिखने का कोई सामान न था। उन्होंने एक तिनका उठा लिया। तिनका मुँह के अंदर ले जाते, तिनका नम (गीला) हो जाता तो तिनके से अपनी हथेली पर हदीस लिखते जाते। इमाम शाफ़ई (रह०) तो अपनी धुन में यह कर रहे थे। उधर इमाम मालिक (रह०) उन्हें ऐसा करते देख रहे थे और उन्हें यह देखकर गुस्सा आ रहा था। पच्चीस हदीसें बयान करने के बाद इमाम मालिक (रह०) ने मजलिस ख़त्म कर दी। लोग उठकर चले गए। इमाम मालिक (रह०) वहीं बैठे रहे। इमाम शाफ़ई (रह०) कहाँ जाते, मदीने में न उनका घर था, न कोई अज़ीज़-रिश्तेदार। चुनांचे वे भी वहीं बैठे रहे। जब वह अकेले रह गए तो इमाम साहब ने हाथ के इशारे से उन्हें अपने पास बुलाया। इमाम शाफ़ई (रह०) बड़े अदब के साथ पास बैठ गए। इमाम मालिक (रह०) ने बड़े ग़ौर से उन्हें देखा, फिर पूछा, ''क्या तुम हरम (काबा) के रहनेवाले हो?'' इमाम शाफ़ई (रह०) ने जवाब दिया, ''जी हाँ, मैं मक्का का रहनेवाला हूँ।''

यह सुनकर इमाम मालिक (रह०) ने कहा, ''मैं तुम्हारे अन्दर बड़ी अच्छी आदतें देख रहा हूँ, तुम बहुत ही तमीज़दार बच्चे हो। ज़बान भी अच्छी बोलते हो, पढ़े-लिखे भी मालूम होते हो, लेकिन इस वक़्त तुमने एक बड़ी बेअदबी की बात की है।''

यह सुनकर इमाम शाफ़ई (रह०) चौंक पड़े। पूछा, ''हज़रत, मैंने इस वक़्त क्या बेअदबी की?'' इमाम मालिक (रह०) ने बताया, ''मैं जब हदीस सुना रहा था तो तुम बच्चों की तरह एक तिनके से खेल रहे थे।'' अब इमाम शाफ़ई (रह०) समझे। अर्ज़ किया, ''मैं खेल नहीं रहा था, मेरे पास चूँकि क़लम-दवात नहीं है, इसलिए मैं एक तिनके से हथेली पर हदीस लिख रहा था।'' ''देखूँ तुम्हारा हाथ।'' कहकर इमाम मालिक (रह०) ने उनका हाथ अपनी तरफ़ खींच लिया। हथेली साफ़ देखकर कहा, ''इसपर तो कुछ भी

1- प्यारे रसूल (सल्ल०) की क़ब्र शरीफ़ मसजिद नबवी में ही एक तरफ़ को है। उसे दीवारों से घेर दिया गया है और छत पर एक गुम्बद बना दिया गया है ताकि छत पर चढ़नेवाले पहचान लें। गुम्बद का रंग हरा है।

नहीं लिखा है।'' इमाम शाफ़ई (रह०) ने जवाब दिया, ''हज़रत यह तो याद रखने का एक बहाना था। हथेली पर कैसे लिख सकता था, न क़लम है न दवात। हाँ, आपने जो हदीसें सुनाईं, वे सब मैंने अपने दिल पर लिख लीं। आप कहें तो सुनाऊँ?''

यह सुनकर इमाम मालिक (रह०) को बड़ा ताज्जुब हुआ। बोले, ''अच्छा सुनाओ।'' इमाम शाफ़ई (रह०) इस तरह हदीस सुनाने लगे— ''मुझसे नाफ़े ने, नाफ़े से अब्दुल्ला बिन उमर ने कहा कि मुझसे इस क़ब्र में सोनेवाले ने फ़रमाया (और यह कहते हुए इमाम मालिक (रह०) की तरह इमाम शाफ़ई (रह०) ने भी रौज़-ए-पाक की तरफ़ दाएँ हाथ से इशारा किया) फिर एक-एक करके पच्चीस हदीसें सुना दीं। इमाम मालिक (रह०) हदीसें सुनकर ख़ुश भी हुए और ख़ुदा की क़ुदरत देखकर ताज्जुब भी किया कि अल्लाह ने इस लड़के को कितना अच्छा हाफ़िज़ा अता किया है। सब तारीफ़ अल्लाह के लिए ही है।

अब मग़रिब का वक़्त हो गया था। नमाज़ के बाद इमाम मालिक (रह०) ने अपने गुलाम से कहा कि अपने आक़ा को घर ले जाओ और इमाम शाफ़ई (रह०) की तरफ़ इशारा किया। गुलाम उन्हें इमाम मालिक (रह०) के घर ले गया, एक कमरे में ठहराया और बताने लगा कि काबा का रुख़ इस तरफ़ है, यह पानी का लोटा रखा है, यह ग़ुसलख़ाना है और यह आपके सोने की जगह है, वग़ैरह-वग़ैरह।

ग़ुलाम यह सब समझा ही रहा था कि इमाम मालिक (रह०) आ गए। उनके साथ नौकर था जिसके हाथों में खानों का थाल था। इमाम साहब ने नौकर से खाने का थाल लेकर नीचे रखा, फिर बड़ी मुहब्बत से इमाम शाफ़ई (रह०) को सलाम किया और नौकर से कहा, ''चलो हाथ धुलाओ।'' नौकर मेहमान के हाथ धुलाने चला तो इमाम साहब ने उसे टोका, ''पहले घरवाले यानी मेज़बान के हाथ धुलाते हैं। खाना खाने के बाद मेहमान के हाथ पहले धुलाने चाहिए।''

इमाम मालिक (रह०) कहते हैं कि, ''मुझे यह नई बात मालूम हुई और बहुत पसंद आई।'' बाद में इमाम साहब से इसकी वजह पूछी तो उन्होंने बताया कि, ''बात यह है कि मेज़बान मेहमान को बुलाता है, इसलिए दस्तरख़्वान पर पहले उसी को पहुँचना चाहिए, ताकि वह खाने का सामान ढंग से सजा सके। खाने के बाद मेज़बान को बाद में इसलिए हाथ धोना चाहिए क्योंकि हो सकता है कि बाद में कोई और खाने के लिए आ जाए तो मेज़बान उसके साथ बैठ सके।''

खाने के बाद बातें शुरू हुईं। इमाम मालिक (रह०) देर तक बैठे हाल पूछते रहे, मक्कावालों के बारे में मालूम करते रहे। जब रात ज़्यादा हो गई तो कहा कि ''मुसाफ़िर

हो, थक गए होगे, अब सो जाओ।'' यह कहकर इमाम मालिक (रह०) चले गए। इमाम शाफ़ई (रह०) बड़े आराम से सोए।

सुबह सवेरे ख़ुद इमाम मालिक़ (रह०) ने आकर जगाया। इमाम शाफ़ई (रह०) जागे तो देखा कि इमाम मालिक (रह०) पानी से भरा लोटा लिए खड़े हैं। देखकर इमाम शाफ़ई मारे शर्म के लोटा न ले सके। इमाम मालिक (रह०) समझ गए, बोले ''भाई इसमें शर्म की क्या बात है? तुम मेरे मेहमान हो और मेहमान की ख़िदमत का हुक्म नबी (सल्ल०) ने दिया है, और फिर तुम्हारे जैसा मेहमान जो दीन का इल्म सीखने आया हो! तुम तो ख़ुदा और उसके रसूल के मेहमान हो।''

यह सुनकर इमाम शाफ़ई की हिम्मत बँधी। उन्होंने लोटा ले लिया और मसजिद नबवी में जाने की तैयारी करने लगे। मसजिद गए, सुन्नतें पढ़कर बैठे रहे। जमाअत से नमाज़ पढ़ी। इमाम मालिक (रह०) ने नमाज़ पढ़ाई। नमाज़ पढ़ाकर मुसल्ले पर ही बैठे कोई वज़ीफ़ा पढ़ते रहे। जब कुछ-कुछ धूप निकल आई तो दर्स की जगह जाकर बैठ गए। लोग भी आसपास आकर बैठ गए। इमाम साहब ने अपनी किताब 'मुवत्ता' इमाम शाफ़ई (रह०) के हाथ में दी और कहा, ''सबको सुनाओ।'' इमाम शाफ़ई (रह०) सुनाने लगे। लोगों ने लिखना शुरू कर दिया। पूरे आठ महीने इमाम शाफ़ई (रह०) ने इमाम मालिक (रह०) के हुक्म से इसी तरह 'मुवत्ता' सुनाई और ऐसा करने से पूरी 'मुवत्ता' उनको ज़बानी याद हो गई।

इन आठ महीनों में इमाम मालिक (रह०) ने इमाम शाफ़ई को अपने घर रखा, उनका पूरा ख़र्च उठाया और उनके साथ इस तरह पेश आते रहे कि लोग उनको इमाम मालिक (रह०) के घराने ही का एक शख़्स समझते थे। उन्हीं दिनों में हज का ज़माना आया तो मिस्र के लोग आए। उन्होंने इमाम मालिक (रह०) से 'मुवत्ता' सुननी चाही तो इमाम साहब के हुक्म से इमाम शाफ़ई (रह०) ने ज़बानी 'मुवत्ता' सुना दी। उनके बाद इराक़ के लोग आए। उनमें एक नौजवान को इमाम शाफ़ई (रह०) ने बड़ा साफ़-सुथरा पाया। जब वह नमाज़ पढ़ चुका तो इमाम शाफ़ई (रह०) ने उससे पूछा, ''भाई आप कहाँ के रहनेवाले हैं?'' ''मेरा वतन इराक़ है।'' उसने जवाब दिया। ''इराक़ के किस शहर में आप रहते हैं।'' इमाम साहब ने पूछा। उसने बताया, ''कूफ़ा में।''

कूफ़ा का नाम सुना तो इमाम शाफ़ई (रह०) को इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) याद आ गए। उनसे पूछा, ''भाई, यह बताओ कि आजकल कूफ़ा में दीन का सबसे बड़ा आलिम

कौन है?" उस नौजवान ने बताया कि इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) और इमाम मुहम्मद (रह०) आज़कल कूफ़ा के माने हुए इमाम हैं और दोनों इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के सबसे अच्छे शागिर्दों में से हैं।" "अच्छा एक बात और बताओ भाई।" इमाम शाफ़ई ने कहा, "तुम इराक़ कब वापस जाओगे?" "कल सुबह-सबेरे हम यहाँ से रवाना हो जाएँगे।" उस नौजवान ने जवाब दिया। यह सुनते ही इमाम शाफ़ई (रह०) दौड़े हुए इमाम मालिक (रह०) के पास पहुँचे, कहा, "हज़रत आप जानते हैं कि मैं इल्म हासिल करने लिए घर से निकला हूँ। सुना है कि कूफ़ा में भी हदीस के बड़े-बड़े आलिम मौजूद हैं। इस वक़्त मौक़ा है। कल एक क़ाफ़िला इराक़ की तरफ़ जा रहा है, आप इजाज़त दें तो मैं इस क़ाफ़िले के साथ कूफ़ा चला जाऊँ।"

इमाम मालिक (रह०) ने प्यारे शागिर्द के शौक़ को देखा तो शाबाशी दी। फिर बड़ी दुआएँ दीं और कहा, "ज़रूर जाना चाहिए। जो शख़्स दीन का इल्म सीखने जाता है, फ़रिश्ते उसकी राह में पर बिछाते हैं, और इल्म के फ़ायदे भी बहुत ज़्यादा हैं।"

इमाम मालिक (रह०) ने शागिर्द के लिए रात ही में सारा इनतिज़ाम कर दिया। सुबह को साथ लेकर क़ाफ़िले में पहुँचे, एक अच्छा-सा ऊँट किराए पर तय किया। इमाम शाफ़ई (रह०) कहते हैं कि मैं बड़े ताज्जुब में था कि रात को उस्ताद के पास एक पाई भी न थी, और न ख़ुद मेरे पास ही कुछ था, फिर भी उन्होंने सुबह को इतना अच्छा ऊँट किराए पर लिया। मैंने उनसे ज़िक्र किया तो उन्होंने अल्लाह की मेहरबानी का वाक़िआ इस तरह सुनायाः—

> "भाई! सचमुच रात मेरे पास कुछ न था। लेकिन रात में किसी वक़्त किसी ने दरवाज़े पर आवाज़ दी, बाहर निकला तो देखा कि अब्दुर्रहमान बिन क़ासिम खड़े हैं। उनके हाथ में एक थैली थी। बड़ी ज़िद करके तोहफ़े में दे गए। थैली लेकर मैं घर के अन्दर गया, खोला तो देखा उसमें सौ दीनार (अशर्फ़ियाँ) थे। ख़ुदा का शुक्र अदा किया कि उसने तुम्हारे सफ़र का इनतिज़ाम अपनी मेहरबानी से कर दिया। मैंने पचास घर के ख़र्च के लिए रख लिए, पचास तुम्हारे लिए लेकर आ गया। लो, रखो और ख़ुदा का शुक्र अदा करो।"

इमाम शाफ़ई (रह०) उस्ताद की यह मुहब्बत देखकर आँखों में आँसू भर लाए और दीनार ले लिए। चार दीनार ऊँट का किराया तय हुआ इसलिए चार दीनार ऊँटवाले को दिया, बाक़ी ख़र्च के लिए अपने पास रखा। क़ाफ़िला रवाना हुआ तो जब तक क़ाफ़िला दिखाई

देता रहा, इमाम मालिक (रह०) वहीं खड़े रहे।

चौबीसवें दिन इमाम शाफ़ई (रह०) कूफ़ा पहुँच गए। अस्र का वक़्त था, नमाज़ के लिए मसजिद में गए। वहाँ जमाअत से नमाज़ हो चुकी थी। एक तरफ़ एक नौजवान को अकेले नमाज़ पढ़ते देखा। इमाम शाफ़ई (रह०) ने देखा कि वह नमाज़ ठीक तरह से नहीं पढ़ रहा था। इमाम साहब ने उसे टोका और नसीहत की कि नमाज़ इतमीनान के साथ पढ़ते हैं। वह नौजवान यह सुनकर बिगड़ा और बकता-झकता चला गया। दरवाज़े पर इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद बिन हसन ने उसे देखा तो हाल पूछा, "क्या बात है?" उसने कहा, "साहब, मैं पन्द्रह साल से आप लोगों के साथ नमाज़ पढ़ रहा हूँ, आपने तो कभी टोका नहीं, लेकिन वह नौजवान जो खड़ा नमाज़ पढ़ रहा है, कहता है कि ठीक तरह से नमाज़ पढ़ा करो। हिज़ाज़ी मालूम होता है, क्योंकि हिजाज़ी ही बिना किसी डर और ख़ौफ़ के बातें करते हैं।"

दोनों बुज़ुर्गों ने यह सुना तो इमाम शाफ़ई (रह०) की तरफ़ देखा, समझ गए कि हिजाज़ी नौज़वान इल्मवाला है। उस इराक़ी नौजवान से कहा, "जाकर उस नौजवान से पूछो कि नमाज़ में दाख़िल होने का क्या तरीक़ा है।" नौजवान इमाम शाफ़ई (रह०) के पास गया और उनसे यह बात पूछी। आपने जवाब दिया, "नमाज़ दो फ़र्ज़ और एक सुन्नत के साथ शुरू करनी चाहिए।"

इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद ने यह जवाब सुना तो समझ गए कि कोई बड़ा आलिम आया हुआ है। नौजवान को फिर भेजा कि पूछकर आए कि वह दो फ़र्ज़ और एक सुन्नत क्या है?

इमाम शाफ़ई (रह०) ने दूसरी बार बताया कि दो फ़र्ज़ यह हैं : एक यह कि नीयत करना और दूसरा यह कि तकबीरे तहरीमा (अल्लाहु अकबर) कहना और सुन्नत यह है कि तकबीरे तहरीमा कहते हुए कानों तक हाथ उठाना।

दोनों बुज़ुर्गों ने जवाब सुना और मसजिद के अंदर गए। वहाँ पन्द्रह-सोलह बरस का एक लड़का सामने देखा तो इमाम शाफ़ई (रह०) उनकी नज़र में कुछ जँचे नहीं। दोनों मसजिद में एक तरफ़ बैठ गए और उसी नौजवान से कहा कि इमाम शाफ़ई को उनके पास बुला लाए।

नौजवान ने आकर इमाम साहब से कहा कि चलो आलिमों की ख़िदमत में। यह सुनकर इमाम शाफ़ई (रह०) समझ गए कि अब इमतिहान लिया जाएगा। इसलिए वे भी अकड़

गए। नौजवान से कहा, "जाओ, और जाकर कह दो कि प्यासे कुएँ के पास जाते हैं, कुआँ प्यासे के पास नहीं जाता।"

यह जवाब सुनकर दोनों बुज़ुर्ग समझ गए कि जवाब देनेवाला बड़ी अच्छी ज़बान बोल रहा है। दोनों उठकर इमाम शाफ़ई (रह०) के पास आए, सलाम किया। अब तो इमाम शाफ़ई (रह०) शर्मा गए, झट से उठकर सलाम का ज़वाब दिया और बढ़कर मुसाफ़हा किया। दोनों बुज़ुर्ग बैठ गए तो इमाम साहब भी बैठ गए। दोनों बुज़ुर्गों ने हाल पूछा और जब उन्हें मालूम हुआ कि इस पन्द्रह-सोलह साल के लड़के ने 'मुवत्ता' ज़बानी याद कर ली है तो दो-तीन मसले पूछे और कहा कि इनके बारे में 'मुवत्ता' में क्या कहा गया है? इमाम शाफ़ई (रह०) ने ठीक-ठीक जवाब दिए तो दोनों बुज़ुर्ग बहुत ख़ुश हुए, ग़ुलाम को बुलाया और कहा कि इन्हें घर ले चलो।

इमाम साहब ग़ुलाम के साथ मसजिद से बाहर आए तो देखा कि एक ख़च्चर सजा-सजाया खड़ा है। ग़ुलाम ने उन्हें ख़च्चर पर बिठाया और घर की तरफ़ ले चला। इमाम शाफ़ई (रह०) कहते हैं कि मैं पुराने कपड़े पहने हुए था, ख़च्चर पर बैठा तो बड़ी शर्म आई, जो मुझे उस ख़च्चर पर देखता, वह देखता ही रह जाता। इमाम शाफ़ई (रह०) इसी तरह इमाम मुहम्मद बिन हसन (रह०) के महल के पास पहुँचे। ग़ुलाम ने महल के सामने ख़च्चर से उतारा। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि इमाम मुहम्मद (रह०) इतने ठाठ से रहते हैं तो इमाम शाफ़ई (रह०) रोने लगे। इतने में इमाम मुहम्मद (रह०) भी आ गए। उन्होंने कहा— "आप अफ़सोस न करें। यह महल मेरी हलाल कमाई से बनाया गया है और ख़ुदा का शुक्र है कि मैं हर साल ज़कात भी निकालता हूँ।" इसी तरह की बातें करते हुए वे इमाम साहब को अन्दर ले गए, एक बढ़िया जोड़ा पहनने के लिए पेश किया। इमाम शाफ़ई (रह०) ने नहा-धोकर नया जोड़ा पहना, फिर बातें होने लगीं। इमाम मुहम्मद बिन हसन (रह०) ने अपनी किताबें दिखाईं और कहा, "आप जो किताब चाहें, लेकर पढ़ सकते हैं।"

इमाम साहब ने एक किताब ले ली कि रात में पढ़ेंगे। सुबह को इमाम मुहम्मद बिन हसन (रह०) को मालूम हुआ कि इमाम शाफ़ई (रह०) ने रात ही रात में पूरी किताब याद कर ली है तो वे दंग रह गए कि अल्लाह तआला ने इस नौजवान को कितना अच्छा हाफ़िज़ा अता किया है।

इमाम शाफ़ई (रह०) बहुत दिनों तक इमाम मुहम्मद बिन हसन (रह०) के यहाँ रहे। यहीं उनको अपनी माँ याद आ गई और उन्होंने इमाम मुहम्मद से घर जाने की इजाज़त

माँगी। यह सुनकर इमाम मुहम्मद (रह०) ने अपने घर की आधी दौलत इमाम शाफ़ई के सामने ला रखी और कहा कि, "इस शर्त के साथ इजाज़त मिलेगी कि यह सब क़बूल कर लो।" इमाम साहब ने जवाब दिया, "हज़रत मैं दौलत कमाने के लिए घर से नहीं निकला था। मेरी माँ ने मुझे अपने से इसलिए जुदा किया था कि मैं दीन का इल्म सीखूँ और आलिम बनकर उनके पास वापस जाऊँ और फिर अल्लाह का दीन फैलाऊँ। और फिर यह कि मैं इतनी सारी दौलत लेकर क्या करूँगा।"

इमाम मुहम्मद (रह०) ने ज़िद की कि इसे लेना ही होगा। यह बड़े भाई की तरफ़ से छोटे भाई के लिए तोहफ़ा है। सफ़र भी लम्बा है, रास्ते में काम आएगा।

चुनाँचे इमाम शाफ़ई (रह०) को यह रक़म लेनी पड़ी। इमाम शाफ़ई (रह०) वहाँ से रवाना हुए और रास्ते में जहाँ सुनते कि कोई आलिम वहाँ है, उससे मिलते और कुछ न कुछ इल्म हासिल करते। अब उनकी उम्र इक्कीस साल हो गई थी।

घूमते-घूमते इमाम शाफ़ई (रह०) बग़दाद पहुँचे। उस वक़्त हारून रशीद बादशाह था। उसको किसी तरह ख़बर हो गई कि एक नौजवान जो बहुत बड़ा आलिम और क़ुरैशी है, बग़दाद की तरफ़ आ रहा है। आप जैसे ही बग़दाद के फाटक के क़रीब पहुँचे, एक सिपाही ने बढ़कर रोका और नाम, बाप का नाम और ख़ानदान पूछा। इमाम साहब ने बता दिया और उसने लिख लिया। इमाम साहब वहाँ से आगे बढ़कर जामा मसजिद में पहुँचे और किनारे पड़कर सो रहे। आधी रात के वक़्त पुलिस ने छापा मारा। मसजिद में जो लोग मौजूद थे, वे घबरा गए। सिपाही एक-एक आदमी को रौशनी में देखने लगे। इमाम शाफ़ई (रह०) को देखा तो पुकारकर कहा, "जिसकी हमें तलाश थी, वह मिल गया। अब किसी के घबराने की ज़रूरत नहीं।"

इमाम शाफ़ई (रह०) सोच में पड़ गए कि इस तरह पकड़े जाने की क्या वजह हो सकती है। सिपाहियों ने बताया कि बादशाह हारून रशीद के पास चलना होगा। इमाम साहब साथ हो लिए। शाही महल में हारून रशीद के सामने पेश किया। वह बड़े शाहाना ठाठ से तख़्त पर बैठा था। इमाम साहब ज़रा भी न डरे और सामने पहुँचकर कहा—"अस्सलामोअलैकुम।"

हारून रशीद ने सलाम का जवाब दिया, फिर पास बिठाया और नाम व पता पूछा। इमाम शाफ़ई (रह०) ने नाम बताया और कहा कि मैं मक्का का रहनेवाला हूँ, क़ुरैश ख़ानदान से हूँ और हाशिमी हूँ। हारून रशीद भी क़ुरैशी और हाशिमी था। दोनों में बातें होने

लगीं। इमाम साहब की बातों से वह उनके इल्म का क़ायल हो गया। उसने आपसे कहा— "मैं आपको अपने यहाँ क़ाज़ी बनाना चाहता हूँ, आप मनज़ूर करें।" इमाम साहब ने क़ाज़ी बनना मनज़ूर नहीं किया, इनकार कर दिया और यह सोचने लगे कि बादशाह मुझे अपने बस में करना चाहता है। कोई ऐसी तदबीर करनी चाहिए कि यहाँ से जल्दी से जल्दी छुटकारा मिल जाए। क़ाज़ी बनने से इनकार पर हारून रशीद ने कहा, "अच्छा तो फिर कोई ऐसी ख़्वाहिश बताइए जिसे मैं पूरा कर दूँ।" इमाम साहब ने कहा— "मैं चाहता हूँ कि जल्द से जल्द बग़दाद से निकल जाऊँ।"

यह सुनकर हारून रशीद रो पड़ा। एक हज़ार की रक़म पेश की और कहा कि "यह मेरा क़ायदा है कि जो मुझसे मिलता है, उसे तोहफ़ा देता हूँ।" इमाम साहब ने थैली ले ली। जब दरवाज़े पर आए तो सिपाहियों ने घेर लिया कि जो इनाम मिला है उसमें से हमें भी दो। इमाम साहब ने कहा कि सबको बुलाओ। जब सब सिपाही आ गए तो सबमें बराबर-बराबर बाँट दिया और एक हिस्सा ख़ुद रख लिया और महल से निकलकर जामा मसजिद में जा बैठे। नमाज़ का वक़्त आया तो एक नौजवान ने नमाज़ पढ़ाई। उसने नमाज़ पढ़ाने में कई ग़लतियाँ कीं और एक ग़लती तो ऐसी कि सजदा सह्व करना चाहिए था, लेकिन उसने नहीं किया। इमाम साहब ने उसे टोका तो उसने दोबारा नमाज़ पढ़ाई।

नमाज़ के बाद आपने उससे कहा कि "क़लम ले आओ, मैं नमाज़ के कुछ मसले बता दूँ, तुम लिख लो।" वह नौजवान क़लम, दवात और काग़ज़ ले आया। इमाम शाफ़ई (रह०) ने लिखाना शुरू किया तो शुरू से आख़िर तक नमाज़ के सारे मसले लिखा दिए। इस तरह एक अच्छी-ख़ासी किताब तैयार हो गई। उस नौजवान का नाम ज़ाफ़रान था, इमाम साहब ने इस किताब का नाम 'किताबुज़-ज़ाफ़रान' रखा।

इमाम शाफ़ई (रह०) बग़दाद में तीन साल रहे। हारून रशीद ने किसी न किसी तरह आपको राज़ी कर लिया कि वह नजरान के तहसीलदार बन जाएँ। इमाम साहब ने मनज़ूर कर लिया लेकिन जल्द ही तहसीलदारी छोड़ दी। कुछ ही दिनों बाद लोग हज के लिए जाने लगे तो कूफ़ा याद आया, इमाम अबू यूसुफ़ और मुहम्मद बिन हसन याद आए, इमाम मालिक (रह०) याद आए और फिर माँ की याद सताने लगी। इमाम शाफ़ई (रह०) ने इस्तीफ़ा लिखकर हारून रशीद को भेज दिया और क़ाफ़िलेवालों के साथ हिजाज़ की राह ली। क़ाफ़िले में किसी ने बताया कि इमाम मालिक (रह०) बड़े मालदार हो गए हैं और एक बड़े महल में बड़े ठाठ से रहते हैं। इमाम साहब ने यह सुना तो सोचा चलकर देखना चाहिए कि मालदारी में ख़ुदा की याद कैसी है।

रास्ते में एक आदमी ने इमाम साहब को पहचाना तो ज़िद करने लगा कि ख़र्च के लिए एक थैली ले लें। इमाम साहब ने बहुत मना किया, लेकिन वह न माना और ज़बर्दस्ती दे ही दी। क़ाफ़िले के साथ एक जगह पर पहुँचे जिसका नाम 'हर्रान' था। जुमे का दिन था, इमाम साहब ने सोचा कि बाल बनवाकर नहा-धो लेना चाहिए, क्योंकि यह सुन्नत है। इमाम साहब हम्माम पहुँचे, नाई से कहा कि सिर मूँड दे। नाई ने आधा ही सिर मूँडा था कि एक रईस आ गया। नाई इमाम साहब की हजामत अधूरी छोड़कर उस रईस की हजामत बनाने लगा। यह इमाम साहब को पसंद न आया। वे समझ गए कि नाई ने डर और लालच की वजह से ऐसा किया है। फिर जब नाई आपकी बाक़ी हजामत बनाने आया तो आपने इनकार कर दिया और उसे मलामत की कि "दौलत के लालच में अल्लाह के एक बन्दे को ज़लील समझा, अच्छा लो, यह रक़म रखो।"

यह बात कुछ और लोग भी देख रहे थे। उन्होंने इमाम सहाब से कहा कि, "यह भी ख़ूब रही! उसने आपके साथ बदसुलूकी की और आप उसको इतनी बड़ी रक़म दे रहे हैं। यह तो बड़ी नादानी की बात है।" यह बातें हो ही रही थीं कि हम्माम से दूसरा रईस निकला। उसने इमाम साहब को देखा तो लपककर पास आया और गले से लगकर लिपट गया।

"तुम कौन हो भाई?" इमाम साहब ने पूछा। उसने बताया कि मैंने आपको पहचान लिया है, आप इमाम शाफ़ई (रह०) हैं। आप मेरे साथ चलिए। इमाम साहब उसके साथ चले। वह आपको उस शहर के अमीर के पास ले गया। अमीर ने बड़ी इज़्ज़त से बिठाया, दस्तरख़्वान चुना गया। इमाम साहब ने कहा कि जब तक मुझे यह नहीं बताया जाएगा कि आप सहिबान ने मुझे कैसे पहचाना, मैं उस वक़्त तक खाना नहीं खाऊँगा। नौजवान रईस और शहर के अमीर ने बताया कि जब आप बग़दाद में थे और आपने एक किताब लिखी थी और उसे पढ़कर लोगों को सुनाया था तो हमने भी सुना था, इस तरह हम आपके शागिर्द हैं। इमाम साहब ने यह सुनकर दोनों को गले लगा लिया। इमाम साहब तीन दिन 'हर्रान' में रहे। शहर के अमीर ने आपसे कहा, "हज़रत मेरे पास चार गाँव हैं और चारों बड़ी आमदनी के हैं। मैं चाहता हूँ कि आप वह चारों गाँव लेना मनज़ूर कर लें और यहीं रहें।" इमाम साहब ने गाँव लेने से इनकार कर दिया तो रईस ने दीनारों की चालीस थैलियाँ सामने ला रखीं और कहा "अच्छा आप जाते हैं तो यह रक़म क़बूल करें।" इसके लिए जब उसने बहुत ज़िद की तो मजबूर होकर इमाम साहब को लेनी पड़ीं।

ख़ुदा की हिकमत भी अनोखी है। जो आदमी दौलत को ठोकरें मारता है, उसे राह चलते दौलत मिलती है और जो दौलत की तरफ़ भागता है, दौलत उससे दूर भागती है। उसे दुनिया में ज़लील करती है। इमाम साहब के हालात जानने के बाद यही बात मालूम होती है।

इमाम साहब 'हर्रान' से निकले तो रास्ते में जिस आलिम से मुलाक़ात हुई, उसे ख़ूब दिया, ग़रीबों को ख़ूब बाँटा। इसं तरह जब शहर 'रमला' में पहुँचे तो उस वक़्त इमाम साहब के पास दस दीनार थे। रमला में किराए पर सवारी ली और अपने उस्ताद हज़रत इमाम मालिक (रह०) से मिलने मदीना की तरफ़ चल दिए। मदीना पहुँचे और मसजिद नबवी में गए, अस्र की नमाज़ पढ़ी। फिर इमाम मालिक (रह०) को बड़े ठाठ से आते देखा। चार सौ आलिम आपके साथ थे। वे एक बढ़िया-सी कुर्सी पर आकर बैठ गए। आज इमाम मालिक (रह०) ने सबसे एक मसला पूछा, कोई न बता सका। इमाम शाफ़ई (रह०) के पास एक बादमी बैठा था, उन्होंने उसे बता दिया और उसने उठकर बयान कर दिया। इमाम मालिक (रह०) ने कहा, "ठीक है, लिख लो।"

इमाम मालिक ने दूसरा मसला पूछा, इमाम शाफ़ई (रह०) ने फिर उसी आदमी को जवाब बता दिया और उसने खड़े होकर बयान कर दिया। यह जवाब भी ठीक था। अब इमाम मालिक (रह०) जो भी मसला पेश करते, वह आदमी इमाम शाफ़ई (रह०) की तरफ़ देखता, वे जवाब बता देते और वह खड़ा होकर उसे बयान कर देता। इमाम मालिक (रह०) उससे बहुत ख़ुश हुए। उसे पास बुलाया, नाम पूछा और पूछा कि किस उस्ताद से पढ़ा है? उसने जवाब दिया, "हज़रत, मैं बिलकुल अनपढ़ हूँ, मेरे पास वह नौजवान जो बैठा है, वह मुझे बता रहा था, उसी की बात मैं दोहरा देता था।"

इमाम मालिक (रह०) ने इमाम शाफ़ई (रह०) को पास बुलाया, कुछ देर देखते रहे फिर पहचान लिया। "क्या आप मुहम्मद बिन इदरीस शाफ़ई हैं?" इमाम मालिक (रह०) ने पूछा। इमाम शाफ़ई (रह०) ने जवाब दिया, "जी हाँ, मैं आपका वही पुराना शागिर्द हूँ।" इमाम मालिक (रह०) ने यह सुनकर उन्हें गले से लगा लिया। ख़ुद कुर्सी के बजाए नीचे बैठ गए और कहा, "कुर्सी पर बैठिए और जो मसले अभी मैंने पूछे थे, उन्हें लोगों को समझाइए।" इमाम शाफ़ई (रह०) ने उस्ताद के हुक्म से उस दिन का दर्स पूरा किया। इमाम मालिक (रह०) बहुत ख़ुश हुए, शाबाशी दी, पीठ ठोंकी और साथ ही बहुत-सी दुआएँ भी दीं।

मग़रिब की नमाज़ के बाद इमाम मालिक नें शागिर्द का हाथ अपने हाथ में लिया और घर ले चले। इमाम मालिक (रह०) का शानदार महल देखकर इमाम शाफ़ई (रह०) रो पड़े। उनके रोने से इमाम मालिक भी उदास हो गए, फिर फ़रमाया, ''शाफ़ई रोते क्यों हो? क्या तुम समझते हो कि मैंने ये सब दुनिया के लिए जमा किया है और आख़िरत के हिसाब को भूल गया हूँ।'' इमाम शाफ़ई (रह०) ने कहा, ''जी हाँ, मुझे यही डर है।''

अब इमाम मालिक (रह०) ने बताया कि ''यह सब माल जो आप देख रहे हैं, यह सब हलाल कमाई का है। मैं हर साल इसकी ज़कात निकालता हूँ। मेरे पास दूर-दूर से इल्म के शौक़ीन तोहफ़े भेजते हैं। नबी (सल्ल०) ने तोहफ़ा क़बूल करने से इनकार करने को मना किया है, इसलिए मैं वापस नहीं करता।'' यह कहकर इमाम मालिक (रह०) ने वे सारे तोहफ़े दिखाए। तोहफ़ों में तरह-तरह के लिबास, घोड़े, ख़च्चर, दूसरे सामान और हज़ारों दीनार थे। इमाम मालिक (रह०) ने कहा कि इस सारे माल में से आधा आपका है। इसके बाद आधे सामान और दीनारों का काग़ज़ लिखकर दे दिया।

इमाम शाफ़ई (रह०) अपने उस्ताद के घर तीन दिन ठहरे, चौथे दिन वहाँ से चले और मक्का की तरफ़ रवाना हो गए। घोड़े, ख़च्चर, कपड़ों के जोड़े, अनाज, दिरहम और दीनार साथ थे। इमाम शाफ़ई (रह०) जब घर से चले थे तो उस वक़्त उनके पास दो चादरें थीं और उनके अलावा कुछ न था। लेकिन आज वे इस ठाठ से मक्का जा रहे थे। माँ को अपने आने की पहले से ख़बर भेज दी थी और वह इनतिज़ार में थीं। रोज़ाना अपनी ख़ालाज़ाद बहनों और दूसरी औरतों के साथ बेटे के आने का रास्ता देखतीं।

इमाम शाफ़ई इस साज़-सामान के साथ मक्का के पास पहुँचे तो मक्के के बाहर ही माँ से मुलाक़ात हुई। माँ ने बढ़कर बेटे को गले से लगा लिया और बहुत ख़ुश हुईं लेकिन थोड़ी ही देर के बाद बहुत उदास हो गईं। इमाम शाफ़ई (रह०) ने उदास होने की वजह पूछी तो कहने लगीं, ''बेटा! मैंने तुझे इल्म हासिल करने के लिए भेजा था, तू तो माल लेकर आया है।'' यह सुनकर इमाम शाफ़ई (रह०) ने सफ़र का पूरा हाल सुनाया और बताया कि यह सब माल इमाम मालिक (रह०) ने तोहफ़े में दिया है। कहने लगीं, बेटा, दौलत घमंड पैदा करती है। क्या तू यह चाहता है कि अपने चचा के बेटों पर अपनी बड़ाई जताए और उन्हें अपने से कम समझे?'' ''आप हुक्म दीजिए कि मैं क्या करूँ?'' इमाम शाफ़ई (रह०) ने माँ से पूछा। ''बेटा, ख़ुदा की राह में ख़ैरात कर दे और ख़ुदा के घर, यानी काबा में फ़क़ीर बनकर चल।''

लीजिए, ऐलान हो गया कि भूखे आएँ, अनाज ले जाएँ; नंगे आएँ, कपड़े ले जाएँ; ग़रीब आएँ, दिरहम और दीनार ले जाएँ; जिसे जिस चीज़ की ज़रूरत हो, आकर ले जाएँ।

देखते ही देखते सारा साज़ो सामान उसी जगह ख़ैरात कर दिया। अब जो आगे चले तो इमाम शाफ़ई (रह०) के पास एक ख़च्चर और पचास दीनार थे और कोई फ़क़ीर न था। मक्का में दाख़िल हुए तो अचानक चाबुक हाथ से नीचे गिर गया। एक बांदी पानी के लिए जा रही थी। उसने देख लिया और चाबुक उठाकर इमाम साहब को दे दिया। इमाम साहब ने बांदी को पाँच दीनार इनाम में दिए। माँ ने पूछा, "बेटा, क्या तेरे पास यही पाँच दीनार थे?" जवाब दिया, "नहीं, मेरे पास पचास दीनार थे, पाँच उसे दे दिए। बाक़ी आपके काम आएँगे।"

माँ ने फिर कहा, "अरे बेटा! इन दीनारों पर इतना भरोसा और वह जो सब कुछ देनेवाला है, उस ख़ुदा पर भरोसा नहीं। निकाल सारे दीनार और दे दे इस बांदी को।"

इमाम साहब ने बाक़ी दीनार भी बांदी को दे दिए और जब घर में पहुँचे तो ख़ाली हाथ थे। इमाम शाफ़ई (रह०) और उनकी माँ की यह बात इमाम मालिक (रह०) ने सुनी तो इमाम शाफ़ई (रह०) को मुबारकबाद कहला भेजी और साथ ही यह पैग़ाम भी भेजा कि आप दीन का इल्म फैलाने में लग जाएँ। मैंने जो कुछ आपको दिया था, वह हर साल आपको भेजता रहूँगा, इनशाअल्लाह!

इसके बाद इमाम मालिक (रह०) ग्यारह साल और जिन्दा रहे और हर साल इतना ही सामान भेजते रहे। इमाम मालिक के इनतिक़ाल के बाद रोज़गार की तलाश हुई तो मक्का से यमन पहुँचे। वहाँ लोगों को हदीस पढ़ाते, दीन सिखाते और साथ में तिजारत भी करते।

इमाम शाफ़ई (रह०) यमन में ही थे कि हारून रशीद ने दरबार में बुला भेजा। आप फिर बग़दाद गए और दो बरस वहाँ रहे। इसके बाद शहरों-शहरों घूमते हुए आख़िर में 'फ़िसतात' पहुँचे और वहीं अपना मदरसा खोलकर दीन की तालीम देने लगे।

आपके शागिर्दों में बड़े-बड़े इमाम हुए, लेकिन इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) सबसे ज़्यादा मशहूर हुए। इमाम शाफ़ई (रह०) ने 52 बरस की उम्र पाई। उम्रभर लोगों को दीन की तालीम देते रहे। छोटी-सी तिजारत से जो कुछ मिल जाता, उसी से सब्र और शुक्र के साथ ज़िन्दगी गुज़ारते। इसी तरह ज़िन्दगी गुज़ारते हुए सन् 204 हि०/819 ई० में अल्लाह को प्यारे हो गए। आपकी बीबी का नाम 'उमदा' था और वह हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि०) की पड़पोती और एक बड़ी आलिमा थीं।

इमाम अहमद बिन हंबल (रह०)

इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) इमाम शाफ़ई (रह०) के सबसे बड़े और मशहूर शागिर्द हैं। आप अपने ज़माने में कुरआन और सुन्नत के सबसे बड़े इमाम माने गए। खुद इमाम शाफ़ई (रह०) ने फ़रमाया कि उन्होंने अहमद बिन हंबल से बड़ा आलिम बग़दाद में किसी को नहीं पाया। इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) अपने उस्ताद के बताए हुए मसले बयान किया करते थे और उनमें कहीं-कहीं अपनी राय भी शामिल कर दिया करते थे। इस तरह इमाम साहब की अपनी अलग फ़िक़ह तैयार हो गई और अरब में लगभग पचास लाख आदमी आपकी फ़िक़ह पर अमल करने लगे।

इमाम अहमद बिल हंबल (रह०) सन् 164 हि०/780 ई० में बग़दाद में पैदा हुए। बाप का नाम मुहम्मद और दादा का नाम हंबल था। आप अपने दादा के नाम से ही मशहूर हुए और आगे चलकर अहमद बिन मुहम्मद के बजाए अहमद बिन हंबल ही कहलाए। इसी नाम से आपकी फ़िक़ह 'फ़िक़ह हंबली' मशहूर हुई। 77 साल की उम्र में सन् 241 हि०/855 ई० में आप अल्लाह को प्यारे हो गए।

इमाम साहब के बाप का बचपन ही में इनतिकाल हो गया। उनकी कुछ दुकानें थीं जो किराए पर उठी हुई थीं और उनसे 17 दिरहम (लगभग 4 रुपये) हर महीने आमदनी हो जाती थी। इतनी ही आमदनी में इमाम साहब की माँ ने आपको पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया भी। आपकी माँ बड़ी दीनदार औरत थीं। उन्होंने बेटे को तालीम का शौक़ दिलाया। सबसे पहले उनको कुरआन का हाफ़िज़ बनाया। इमाम साहब ने सात बरस की उम्र में ही पूरा कुरआन याद कर लिया था। इसके बाद पढ़ना-लिखना सीखा।

इमाम साहब ने बचपन ही में लिखना सीख लिया तो इससे परदेदार औरतों को बड़ी आसानी हो गई। बहुत-सी औरतों के शौहर फ़ौज में थे, वे आपको घर बुलाकर अपने शौहरों को ख़त लिखवाया करतीं। इमाम साहब उन औरतों की बातें किसी से बताते नहीं थे, इसलिए औरतें आपकी बहुत क़द्र करती थीं। किसी का राज़ दूसरे को बताना इमाम साहब बहुत बुरा समझते थे।

इमाम साहब के एक रिश्तेदार सरकारी जासूसी के महकमे में बग़दाद में काम करते

थे। दिनभर की खुफ़िया ख़बरें पुलिस के बड़े अफ़सरों को भेजा करते थे। ये ख़बरें वह खुद ही दफ़्तर में पहुँचाते थे। एक दिन वह किसी काम की वजह से खुद न जा सके तो भतीजे को बुलाया और कहा कि काग़ज़ों का एक बंडल उनके अफ़सर को दे आएँ। किसी और को न देने की सख़्त ताकीद की। इमाम साहब अभी थे तो कम उम्र ही लेकिन जानते थे कि उस बंडल में उन नेक और अच्छे आलिमों की शिकायतें भी होंगी जो ख़लीफ़ा के ग़लत कामों के बारे में लोगों को बताया करते थे और उनसे बचने की नसीहतें करते थे। ऐसे आलिमों की तरफ़ से ख़लीफ़ा को हमेशा चौकन्ना रहना पड़ता था। चुनांचे इमाम साहब वह बंडल लेकर घर से चले और पुलिस के बड़े अफ़सर के हवाले करने के बजाए उसे दरिया में डाल दिया और घर लौट आए। उस दिन की ख़बरें अफ़सर को नहीं मिलीं तो उसने इमाम साहब के उस रिश्तेदार से जवाब तलब किया। उसने इमाम साहब को बुलाकर पूछा तो आपने साफ़ कह दिया कि काग़ज़ों का वह बंडल उन्होंने दरिया में फेंक दिया। वजह पूछी तो बताया कि, "अच्छे लोगों के भेद खोलना अल्लाह को पसंद नहीं।" उसने यह बात अपने अफ़सर को लिख भेजी। उसने इमाम साहब को बुलाकर पूछा तो आपने उससे भी यही कह दिया। अफ़सर ने बच्चा समझकर कुछ न कहा। लेकिन जो लोग इस कमसिन बच्चे की बातें सुन रहे थे और उनकी आदतें जानते थे, वे कहते थे कि "यह बच्चा अगर ज़िन्दा रहा तो बड़ा होकर अपने ज़माने में हुज्जत होगा।" हुज्जत का मतलब यह कि जो मसला बताएगा, वह कुरआन और सुन्नत के मुताबिक़ बिलकुल ठीक होगा।

इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) के बचपन में बग़दाद में दीन के बड़े-बड़े आलिम मौजूद थे। आपने सात बरस तक उनसे कुरआन और हदीस का इल्म हासिल किया। सबसे पहले इमाम अबू युसूफ़ (रह०) के मंदरसे में पढ़े। बग़दाद के आलिमों से इल्म हासिल करके आपका दिल नहीं भरा तो आपने दूर-दूर शहरों का सफ़र किया। जहाँ सुना कि कोई बड़ा आलिम वहाँ मौजूद है, उसके पास पहुँचे और उससे इल्म हासिल किया। सन् 186 हि०/ 802 ई० में बसरा, कूफ़ा, मदीना, शाम, हिजाज़ और यमन का सफ़र किया। इमाम शाफ़ई (रह०) से मुलाक़ात हुई, उनका दर्स सुना। इमाम शाफ़ई (रह०) की तालीमात का असर आपपर सबसे ज़्यादा हुआ और आपने उन्हीं की पैरवी की। बचपन में ही आपमें यह ख़ूबी पैदा हो गई थी कि चाहे बड़ी से बड़ी ज़रूरत हो, किसी से भी कोई चीज़ या रक़म मुफ़्त न लेते थे। मेहनत-मज़दूरी कर लेते थे। कपड़ा बुनना जानते थे, मौक़ा मिलता तो कपड़ा बुनकर कमा लेते और उसी में गुज़र-बसर करते। इमाम साहब ने फ़ारसी ज़बान भी

सीखी थी। आपके इल्म की शोहरत उसी वक़्त हो गई थी जब आपने बग़दाद से दूसरे शहरों का सफ़र किया। जिस तरह आपने बड़े-बड़े इमामों से दीन का इल्म सीखा, उसी तरह आपने बड़े-बड़े शागिर्द छोड़े। हदीस के सबसे बड़े इमाम हज़रत बुख़ारी (रह०) भी आपके शागिर्द थे। आख़िर में इमाम साहब बग़दाद चले गए और उम्रभर बग़दाद ही में रहे और वहीं दीन का इल्म सिखाते-फैलाते रहे, हदीस और फ़िक़ह का दर्स देते रहे।

जान की बाज़ी लगा दी

इमाम अहमद बिल हंबल (रह०) ने कुरआन और हदीस में जो कुछ पढ़ा उसपर हर वक़्त अमल भी किया करते थे। कोई एक बात भी अल्लाह और उसके रसूल के ख़िलाफ़ नहीं करते थे। इस सिलसिले में एक बार आपको एक बड़े इमतिहान से गुज़रना पड़ा और अल्लाह के फ़ज़ल से आप इस इमतिहान में पूरे उतरे। हुआ यह कि आपके ज़माने में जो बादशाह था, उसे कुछ लोगों ने एक मसले पर बहका दिया। कुरआन के बारे में एक बड़ी ही ग़लत बात उसे समझा दी। बादशाह की समझ में वह बात उसी ग़लत तरह आ गई और उसने हुक्म दिया कि उसकी हुकूमत में जितने भी आलिम हैं सब उसी बात को ठीक मानें। साथ ही यह भी हुक्म दिया कि जो न माने उसे क़ैद करके राजधानी भेज दिया जाए या क़त्ल कर दिया जाए।

जिन आलिमों ने बादशाह की बात न मानी उनमें दीन पर सबसे ज़्यादा जमे रहनेवाले हज़रत इमाम अहमद बिल हंबल (रह०) थे। वे उस वक़्त के सबसे बड़े इमाम थे और आपके माननेवाले चारों तरफ़ फैले हुए थे। बादशाह का ख़याल था कि अगर इमाम सहाब मान लेंगे तो फिर सभी मान लेंगे, लेकिन इमाम साहब ने बादशाह की बात मानने से इनकार कर दिया और कहा कि अगर यह बात सही है तो कुरआन और हदीस से साबित करो।

बादशाह और उसके तरफ़दार आलिम कुरआन और हदीस से तो साबित न कर सके, हाँ ज़बरदस्ती मनवाना चाहा। बादशाह ज़्यादातर ऐसे ही मिज़ाज के होते हैं। अपनी ग़लत बात भी वह दूसरों से मनवाना चाहते हैं। ख़ुदा का जो बन्दा बादशाहों की बात मानने से इनकार कर देता है उसकी जान को आ जाते हैं। दूसरे इमामों के बारे में आप पढ़ चुके हैं कि इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) को उनके वक़्त के ख़लीफ़ा ने कैसी-कैसी तकलीफ़ें दीं, इमाम मालिक (रह०) के साथ कैसा बुरा सुलूक किया। अब इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) की बारी थी। चुनांचे उनके वक़्त के कई बादशाह इमाम साहब के दुश्मन हो गए।

पहले क़ैद करने का हुक्म दिया, फिर हर एक ने अपने सामने कोड़ों से पिटवाया। सबसे ज़्यादा ज़ुल्म ख़लीफ़ा वासिक़ ने किया। उसने इस तरह कोड़े लगवाए कि अगर वह कोड़े हाथी को मारे जाते तो हाथी चीख़ उठता। लेकिन इमाम साहब हर कोड़ा पड़ने पर पुकारते— "क़ुरआन और सुन्नत से साबित करो तो मानूँगा, वरना जान दे दूँगा, मगर मानूँगा नहीं।"

देखनेवालों का बयान है कि हर कोड़े पर आपके बदन की खाल उधड़ जाती। एक दिन आपपर कोड़े पड़ने शुरू हुए तो पहले कोड़े पर आपने कहा, "बिसमिल्लाह", दूसरा कोड़ा पड़ा तो पुकारे, "ला हौ-ल वला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाह" (अल्लाह के सिवा न कोई ताक़त है और न क़ुव्वत), तीसरे कोड़े की चोट पड़ी तो कहा, "क़ुरआन का हुक्म दिखाओ।" चौथे कोड़े पर आपने क़ुरआन की एक आयत पढ़ी जिसका मतलब है कि हमपर जो मुसीबत आती है, वह अल्लाह ने हमारे लिए लिख दी है। इमाम साहब के इस आयत के पढ़ने का मतलब यह था कि "मैं उसपर राज़ी हूँ जो अल्लाह ने मेरे मुक़द्दर में लिख दिया है।"

इस तरह उनतीस कोड़े पड़े। तीसवाँ कोड़ा आपके कमरबंद पर पड़ा तो कमरबंद टूट गया और पाजामा नीचे को खिसका। इमाम साहब बड़े हयादार थे, नंगे होने के डर से अल्लाह को पुकारा, "ऐ अल्लाह! अगर मैं सच्चा हूँ तो मुझे नंगा होने से बचा ले।" जैसे ही आपने दुआ की, पाजामा ऊपर हो गया। ख़लीफ़ा ने यह देखा तो महल में चला गया और सिपाहियों ने आपको जेल में डाल दिया। वैसे तो बग़दादवाले रोज़ ही तकलीफ़ें और ज़ुल्म देखते थे, लेकिन उस दिन रिआया ने बग़ावत कर दी, जेलख़ाने पर धावा बोल दिया और सबने यह एलान कर दिया कि अगर इमाम साहब मर गए तो बादशाह से उनका बदला लिया जाएगा।

बादशाह ने सुना तो बहुत घबराया। एक बड़े आलिम को बुलाया जो ख़लीफ़ा का तरफ़दार था लेकिन लोग उसे भी बहुत मानते थे। उसके ज़रिए लोगों को कहलवाया गया कि इमाम साहब सही-सलामत हैं, तब रिआया वापस हुई।

किसी ने इमाम साहब से पूछा "आपकी दुआ इतनी जल्दी क़बूल होने की वजह क्या थी?" फ़रमाया, "मेरी सच्चाई, हलाल रोज़ी और अल्लाह के सामने मेरे दिल की गिड़गिड़ाहट।"

इस तरह इमाम साहब ने बरसों दुख झेला। वासिक़ के बाद मुतवक्किल बादशाह हुआ

तो उसने आपको क़ैद से निकाला। मुतवक्किल इमाम साहब का तरफ़दार था, लेकिन जब तक ख़ुद बादशाह न होता, दम मारना मुश्किल था। मुतवक्किल ने इमाम साहब की बड़ी इज़्ज़त की और आपपर धन-दौलत की ऐसी बारिश की कि आप घबरा गए। पुकार उठे कि ''यह मेहरबानी मेरे लिए कोड़ों से ज़्यादा सख़्त है।''

कहने का मतलब यह था कि कहीं ऐसा न हो कि उसकी इस मेहरबानी की मुरव्वत में कभी किसी ग़लत बात को मानना पड़े।

अल्लाह तआला इमाम साहब और आपके माननेवालों पर अपनी रहमत नाज़िल करे और हमें भी तौफ़ीक़ दे कि हम भी हर इमतिहान में पूरे उतरें और उसके रसूल (सल्ल०) के हुक्म के ख़िलाफ़ कोई काम न करें और अल्लाह के सिवा किसी से न डरें।